रवीन्द्र-साहित्य

चौदहवाँ भाग

■

'विसर्जन'

नाटक

•

'भाभी'

उपन्यास

•

कणिका

कविताएँ

धन्यकुमार जैन

रवीन्द्र-साहित्य

चौदहवाँ भाग

अनुवादक

धन्यकुमार जैन

हिन्दी-ग्रन्थागार

पी-१५, कलाकार स्ट्रीट

बड़ाबाजार : कलकत्ता - ७

हिन्दी - हिन्दुस्थानीमें

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरका
सम्पूर्ण साहित्य एकसाथ एक जगह
मिल सके इस उद्देश्यसे यह
ग्रन्थमाला प्रकाशित की जा रही है

आशा है

सुरुचि-सम्पन्न पाठक-पाठिकाएँ और
पुस्तकालय इसे अवश्य अपनायेंगे

और

जितना अधिक और जितनी जल्दी

अपनायेंगे

उतना ही इसका अनुवाद और
प्रकाशन-कार्य सुन्दरता और
शीघ्रतासे आगे बढ़ता जायगा

-

यह ग्रन्थमाला

लगभग अस्सी भागोंमें पूरी होगी

—धन्यकुमार जैन

कणिका

[छन्द वसन्ततिलका]

समर्थकी क्षमा

आके कहा सुमुनि नारदने धरासे,
"निन्दा करें मनुज क्यो तव अन्न खाके ?
'मिट्टी' कहे, 'मलिन धूलि' कहे घृणासे,
ऐसे कृतघ्न जन ये ! गलती तुम्हारी,
क्यों अन्न देकर इन्हे रखती जिलाये ?
भूखे मरें तब कही समझें तुम्हें ये !"
बोली धरा, मुसकरा, करुणामयी - सी,
"कैसे, भला, मनुजसे समता करूं मै ?
निन्दा कभी न लगती ममतामयीको,
ये तो अभी मर मिटे, मुंह मोड लूं तो !"

—

ध्रुव सत्य

मै हू प्रकाश, अतिहीन 'दिशा' जरा-सा,
मौजूद हूँ, बस यही, कुछ भी नही हू।
देखूं, अहो, पलकमें, मम ओटमे तो,
हे अन्धकार, तुम हो, बिन आदि-अन्त !

—

गुणज्ञ

मै हू रँगीन तितली, उडती हवामें,
तो भी न देख सकते कवि काव्य-स्रष्टा !
बोलो भला, भँवर हे, यह बात क्या है,
ऐसे भरे सुगुन क्या तुममें, बताओ ?

भिक्षा और उपार्जन

"कार्पण्य क्यों, वसुमती, इतना बताओ,
खोदें जभी, तब कहीं हम अन्न पायें ?
देना तुम्हें अगर है, खुश हो हमें दो,
क्यों कष्ट देकर हमें इतना सताती ?
जोते बिना हल, मिले, क्षति क्या बताओ ?"
ज्यों ही सुना धरणि ने, कहने लगी यों,
"मेरा सुगौरव, अहो, इसमें जरा-सा !
जोते तुम्हीं मनुजकी महती महत्ता !"

मृत्यु

हे मृत्यु, आज मनमें यह प्रश्न जागा,
"होती नहीं अगर जो तुम शून्य माया,
होता न क्या निखिलका क्षणमें विलोप ?
माया तुम्हीं जगतकी परिपूर्ण-रूपा,
देखे समान हम क्या जगके किनारे,
कोई महान इसमें, हम, गिनते हैं ?"

कम जानना और अधिक जानना

विसर्जन

नाटक

नाटकके पात्र

गोविन्दमाणिक्य	त्रिपुराके राजा
नक्षत्र राय	राजाका छोटा भाई
रघुपति	राज-पुरोहित
जयसिंह	रघुपति-द्वारा पालित राजपूत युवक, राज-मन्दिरका सेवक
चाँदपाल	दीवान
नयन राय	सेनापति
ध्रुव	राज-पालित बालक
मन्त्री	
पुरवासीगण	
गुणवती	राज-महिषी
अपर्णा	भिखारिणी

विसर्जन

पहला अंक

पहला दृश्य

मन्दिरमें अकेली गुणवती

गुणवती—मा, मा, मैंने तुम्हारा क्या दोष किया है मा ? भिखारी जो पेटके लिए सन्तान बेच देते हैं, उन्हें भी तुम सन्तान देती हो, पापिष्ठा जो लोक-लाजके डरसे अपनी सन्तानका वध कर डालती हैं, उनके गर्भमें भी तुम भेज देती हो असहाय जीवोंको ! और मैं, सोनेके पलगकी महारानी, सैकडों दास-दासी और सेना-प्रजा सबकी अधीश्वरी मैं, अपने उत्तप्त अशान्त हृदयमें सिर्फ एक बच्चेके स्पर्शकी लालसामें तडप रही हू, अपने प्राणोंमें और-एक प्राणाधिक प्राणके लिए भटक रही हूं । मेरी यह छाती, मेरी ये बाँहें, मेरी यह गोद, मेरी ये आँखें अपने लिए सिर्फ एक जीवन्त निविड नीड रचना चाहती हैं, जरा-से एक प्राण-कणके लिए ! इतना ही तो चाहती हू, मा, कि उसकी नई आँखें प्रथम प्रकाशमें मुझ ही को देखें, मेरी गोदमें उसके भाषाहीन मुहसे आनन्दकी पहली हँसी खिल उठे ! कुमार-जननी मा, बता किस पापसे मुझे वचित रखा मातृस्वर्गसे ?—

रघुपतिका प्रवेश

—प्रभु, हमेशासे मैं माकी पूजा करती आई हू । जान-बूझकर मैंने कभी कोई दोष नहीं किया । पुण्यका शरीर है मेरे पतिका, महादेवके समान, फिर किस दोषपर मुझे नि सन्तान रखा महामायाने ?

रघुपति—माका खेल है, कौन समझ सकता है बताओ? पाषाण-तनया इच्छामयी हैं, सुख-दुःख सब उन्हींकी इच्छासे है। धीरज रखो। अबकी बार तुम्हारे नामसे पूजा की जायगी। श्यामा अवश्य प्रसन्न होंगी।

गुणवती—इस साल पूजाकी बलिके पशु मैं स्वयं दूंगी। मैं मन्नत मानती हूं, मा अगर मुझे सन्तान दें तो हर साल मैं एक सौ भैंसे और तीन सौ बकरे चढ़ाऊंगी।

रघुपति—पूजाका समय हो चला।

[दोनोंका प्रस्थान

गोविन्दमाणिक्य अपर्णा और जयसिंहका प्रवेश

जयसिंह—क्या आदेश है महाराज!

गोविन्दमाणिक्य—छोटा-सा एक बकरीका बच्चा बेचारी इस स्नेहकी पुतली गरीब बालिकासे छीन लाये, माके आगे बलि देनेके लिए? यह दान क्या प्रसन्न-दक्षिण-हस्तसे लेंगी मा-जननी?

जयसिंह—मैं कैसे जान सकता हूं, महाराज, कहांसे लाया करते हैं अनुचरगण पशु, देवीकी पूजाके लिए! क्यों जी, तुम क्यों रो रही हो! स्वयं विश्वमाताने जिसे ले लिया है उसके लिए रोना क्या शोभा देता है?

अपर्णा—कौन है तुम्हारी विश्वमाता! मेरा बच्चा नहीं पहचानेगा उसे। बिना माका बच्चा है वह, खुद अपनी माको भी नहीं जानता। मुझे अगर आनेमें देर हो जाती तो वह शाम तक नहीं खाता, मिमियाता-हुआ देखता रहता है मेरी राह,—जब मैं आती हूं, आके गोदमें लेकर खिलाती हूं, तब खाता है। मा तो मैं हूं उसकी!

जयसिंह—महाराज, अपने प्राणोंका दान देकर भी अगर उसे बचा सकता तो बचा लेता। किन्तु, मा उसे ले चुकी, अब मैं उसे कैसे लौटाऊं?

अपर्णा—माने उसे लिया है? झूठ बात; रघुपतिने लिया है वो!

जयसिंह—छि छि, ऐसी बात मुंहसे नहीं निकालते।

अपर्णा—मा, तुमने छीना है मुझ-गरीबिनीका धन! राजा अगर चोरी करे, सुना है उसके ऊपर भी एक राजा है सारे जगतका; – मा, तुम अगर चोरी करो तो कौन उसका न्याय करेगा! महाराज, तुम्हीं बताओ—

गोविन्दमाणिक्य—बेटी, मेरा मुह बन्द है। इतनी व्यथा क्यों? इतना खून क्यों? कौन देगा इसका उत्तर?

अपर्णा—यह जो सीढ़ियोंसे खूनकी धारा उतरती चली गई है, यह क्या उसीका खून है? और बच्चा मेरा! हाय हाय, मुझे उसने कितना पुकारा होगा, कितना रोया होगा मेरे लिए वह, व्याकुल आँखोंसे कितना देखता रहा होगा चारों तरफ, कैसा तड़फड़ाया होगा! मेरे प्राण जहाँ थे वहाँसे क्यों नहीं दौड़े आये?

जयसिंह (प्रतिमाके प्रति)—मा, आजन्म पूजता आया हूं, तो भी तेरी माया समझमे नहीं आती। करुणासे रोते हैं मानवके प्राण, – और दया नहीं विश्वजननीके!

अपर्णा (जयसिंहसे)—तुम तो निष्ठुर नहीं हो! तुम्हारी आँखोंमें तो आँसू भर आये मेरे दुःखसे। चले आओ, चले आओ तुम इस मन्दिरको छोड़कर, चले आओ। क्षमा करो मुझे, झूठ-मूठको अपराधी बनाया मैंने तुम्हे।

जयसिंह (प्रतिमाके प्रति)—तुम्हारे मन्दिरमें यह कैसा नवीन सगीत ध्वनित हो उठा आज, हे गिरिनन्दिनी, करुणा-कातर कण्ठसे! भक्तका हृदय अपूर्व वेदनासे व्याकुल हो उठा है। – हे शोभने, कहाँ जाऊं इस मन्दिरको छोड़कर! कहाँ है आश्रय?

गोविन्दमाणिक्य (नेपथ्यसे)—जहाँ प्रेम है। [प्रस्थान

जयसिंह—कहाँ है प्रेम! – हे भद्रे, आओ, आओ तुम मेरी कुटियामें। अतिथिको मैं देवी-रूपमें पूजा करूंगा आज, प्रण किया है मैंने।

[जयसिंह और अपर्णाका प्रस्थान

दूसरा दृश्य

राज-सभामें सभासदगण

राजा, रघुपति और नक्षत्ररायका प्रवेश

सबके सब ।(उठकर)—जय हो महाराजकी जय !

रघुपति—राजाके भण्डारमें आया हू वलिके लिए पशु लेने ।

गोविन्दमाणिक्य—मन्दिरमें जीव-वलि इस सालसे निषिद्ध की जाती है ।

नयन राय—वलि निषिद्ध !

मन्त्री—निषिद्ध !

नक्षत्र राय—अच्छा ! वलि निषिद्ध !

रघुपति—यह क्या स्वप्नमे सुन रहा हूं ?

गोविन्दमाणिक्य—स्वप्न नहीं प्रभु ! अब तक स्वप्नमे था, आज जागरण है । वालिकाकी मूर्ति धरकर स्वय जननी आकर मुझसे कह गई हैं, जीवोंका रक्त उन्हे नहीं सुहाता ।

रघुपति—आज तक कैसे सुहाता रहा ? हजारों वर्षोंसे करती आई हैं रक्त पान, आज अकस्मात् अरुचि कैसे ?

गोविन्दमाणिक्य—नहीं किया रक्त-पान । मुह फेर लेती थीं देवी जब तुमलोग खून बहाते थे उनके आगे ।

रघुपति—महाराज, क्या कर रहे हो, अच्छी तरह सोच देखो ! शास्त्रका विधान तुम्हारे अधीन नहीं ।

गोविन्दमाणिक्य—सब शास्त्रोंसे बडा है देवीका आदेश ।

रघुपति—एक तो भ्रान्ति, उसपर अहकार ! अज्ञ नर, तुम्हींने केवल सुना है देवीका आदेश ! मैंने नहीं सुना ?

नक्षत्र राय—तुम्हारी क्या राय है मन्त्री ? यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है ! पुरोहितजीने नहीं सुना ?

गोविन्दमाणिक्य—देवीकी आज्ञा प्रतिक्षण ध्वनित हो रही है जगतमें। वह बहरा है जो सुनके भी अनसुनी कर देता है उस वाणीको।

रघुपति—पाखण्डी, नास्तिक हो तुम!

गोविन्दमाणिक्य—पुरोहित, समय नष्ट हो रहा है। अब जाओ मन्दिरके कामसे। प्रचार करते जाना रास्तेमें जाते-हुए, मेरे त्रिपुर-राज्यमे जो कोई जीव-हत्या करेगा जीव-जननीके नामपर, उसे निर्वासन-दण्ड दिया जायगा।

रघुपति—यही स्थिर हुआ?

गोविन्दमाणिक्य—हाँ, यही।

रघुपति (उठकर)—तो विध्वस है! ध्वस हो जाओगे!

चाँदपाल (दौडा आता है)—हें हें! ठहरो! ठहरो! क्या कर रहे हो पुरोहित!

गोविन्दमाणिक्य—बैठो चाँदपाल।—महाराज, कहते जाओ, मनोव्यथा हलकी करके जाओ अपने कामसे।

रघुपति—तुमने क्या समझ रखा है मनमे कि त्रिपुर-ईश्वरी त्रिपुराकी प्रजा हैं? उनपर प्रचारोगे अपना नियम? हरण करोगे उनकी वलि! इतना सामर्थ्य नहीं तुममें! मैं हूँ माका सेवक! [प्रस्थान

नयन राय—क्षमा करना अधीनकी धृष्टता, महाराज! किस अधिकारसे प्रभु माकी वलि—

चाँदपाल—शान्त होओ सेनापति!

मन्त्री—महाराज, विलकुल तय ही कर लिया है क्या? आज्ञा अब वापस नहीं ली जा सकती?

गोविन्दमाणिक्य—अब नहीं, मत्री, पापको नष्ट करनेमें देर नहीं करना चाहिए।

मन्त्री—पापकी क्या इतनी आयु होती है महाराज? कितने हजारों

वर्षोंसे जो प्राचीन विधान देवीके चरणोंमें बूढा हो चला है, वह क्या 'पाप' हो सकता है ?

[राजा चुप रहकर सोचते हैं]

नक्षत्र राय—हाँ, बात तो ठीक है मन्त्री, वह क्या 'पाप' हो सकता है ?

मन्त्री—शुरूसे हमारे पितामहगण भक्तिके साथ पालन करते आये हैं इस सनातन प्रथाका। इसका अपमान उन्हींका अपमान है।

[राजा विचारमें मग्न हैं]

नयन राय—सोच देखो महाराज, युग-युगमें जिसने पाई है शत-सहस्र भक्तियोंकी सम्मति, उसे नष्ट करनेका क्या अधिकार है महाराजको !

गोविन्दमाणिक्य (गहरी साँस लेकर)—तर्क रहने दो। जाओ मन्त्री, आदेश प्रचार करो जाकर : आजसे बन्द है बलिदान ! [प्रस्थान

मन्त्री—यह हुआ क्या !

नक्षत्र राय—हूं, मन्त्री, यह हुआ क्या ! सुना था, मगोंके मन्दिरमें बलि नहीं होती,—आखिर मगों और हिन्दुओंमें भेद क्या रह गया ! क्या कहते हो जी चाँदपाल, तुम क्यों चुप हो ?

चाँदपाल—कायर हूँ मैं, क्षुद्र-प्राण, बुद्धि भी कुछ कम है, बगैर समझे ही पालन किया करता हूँ राजाका आदेश।

तीसरा दृश्य

मंदिरमें जयसिंह

जयसिंह—मा, यहाँ सिर्फ तुम हो और मैं। इस मन्दिरमें दिन-भर और कोई भी नहीं। लम्बा दिन है ! बीच-बीचमें मानो कोई पुकार रहा है मुझे। तेरे पास रहते हुए भी अकेलापन क्यों है मा ?

नेपथ्यमें गीत

चला अकेला पन्थी जगका,
कौन दिखाये पथ इस भवका ?

जयसिंह—मा, यह कैसी माया ! देवताके लिए अपने प्राण देते हैं मानव-प्राण। अभी-अभी तुम निर्वाक निश्चल थीं,—अब जीवन्त हो उठीं, सन्तानकी पुकारसे सजग हो उठीं जननी !

गीत गाते-हुए अपर्णाका प्रवेश

चला अकेला पन्थी जगका,
कौन दिखाये पथ इस भवका ?
ना डर, ना भय,
चञ्चल चिन्मय
मधुप बना लोभी सौरभका
भटक रहा है पन्थी भवका।

जयसिंह—अकेला ! दक्षिणी पवन अगर बन्द हो जाय, फूलका सौरभ अगर न आये, दसों दिशाएँ अगर जाग उठें सन्देहके समान, तो फिर कहाँ है सुख, कहाँ है मार्ग ? जानती हो, अकेला किसे कहते हैं ?

अपर्णा—जानती हू। मैं तो परिपूर्ण हृदय लिये बैठी हूं, देना चाहती हू, पर कोई लेनेवाला नहीं !

जयसिंह—सृजनसे पहले देवता जैसे अकेला है ! ठीक कहती हो ! सच है। मालूम होता है यह जीवन बहुत ज्यादा है,—जितना बडा है उतना ही सूना है, उतना ही अनावश्यक।

अपर्णा—जयसिंह, तुम शायद अकेले हो ? इसीसे देखती हूं, जो कगाल है उससे भी बढकर कगाल हो तुम ! जो तुम्हारा सब-कुछ ले सकती है, मानो तुम उसीको ढूँढ रहे हो। इसीसे, भटक रहे हो तुम दीन-दुःखी

सबके द्वारपर। इतने दिन भीख माँगती फिरी मैं, कितने आदमी देखे, कितनों-ही-के मुहकी तरफ देखती रही, लोगोंने सोचा कि सिर्फ भीखके लिए! इसीसे, दूरसे ही दी उनलोगोंने मुष्टि-भिक्षा तुच्छ दया करके। इतनी दया तो कभी नहीं पाई कहीं भी, जिसे पाकर अपना दैन्य ही भूल गई आज!

जयसिंह—यथार्थ दाता हैं जो, खुद ही उतर आते हैं वे दानके रूपमें दरिद्रकी तरफ, जमीनपर। आकाशसे जैसे वर्षाके रूपमें मेघ उतर आते हैं मरुभूमिपर, वैसे ही देवी उतर आती हैं मानवी होकर, जिससे प्रेम करता हू उसके मुँहमें। दरिद्र और दाता, देवता और मानव समान हो जाते हैं तब। वो देखो, गुरुदेव आ रहे हैं मेरे।

अपर्णा—तो मैं जाती हू। ब्राह्मणसे मैं बहुत डरती हूं। कैसी कठिन तीव्र दृष्टि है! कठिन ललाट पाषाण-सोपान है मानो मन्दिरका!

[प्रस्थान

रघुपतिका प्रवेश

जयसिंह (पांव धोनेका पानी वगैरह आगे रखते हुए)—गुरुदेव!

रघुपति—जाओ, जाओ।

जयसिंह—जल लाया हूं।

रघुपति—रहने दो, रख दो जल।

जयसिंह—कपड़े?

रघुपति—कौन चाहता है कपड़े!

जयसिंह—कोई अपराध बन पड़ा है मुझसे?

रघुपति—फिर! कौन कहता है कि तुमने किया है अपराध? घोर कलिकाल आ गया। आज बाहुबल राहुके समान घेरता चला आ रहा है ब्रह्मतेजको ग्रास करनेके लिए,—सिंहासन उठा रहा है सिर यज्ञ-वेदीपर! हाय-हाय, कलिकालके देवता, तुम भी सभासदों-से चाटुकार बन गये? चतुर्भुजा, चारो हाथ जोड़े हुए हो! वैकुण्ठ क्या फिर छीन लिया दैत्योंने?

देवता क्या सब-के-सब रसातलमें चले गये ? सिर्फ दानव और मानव मिलकर दर्पके साथ विश्वका राज्य भोग रहे हैं ? देवता अगर नहीं रहे तो न सही, ब्राह्मण तो हैं। ब्राह्मणके रोष-यज्ञमे राजदण्ड और सिंहासन हविकाष्ठ बनकर रहेगा ! (जयसिंहके पास जाकर स्नेहके साथ) वत्स, आज तुम्हारे साथ मैंने रूखा आचरण किया है, चित्त मेरा अत्यन्त क्षुब्ध है आज।

जयसिंह—क्या हुआ है प्रभु ?

रघुपति—क्या हुआ है ? पूछो अपमानिता त्रिपुरेश्वरीसे। इस मुँहसे कैसे कहूँ कि क्या हुआ है।

जयसिंह—किसने किया है अपमान ?

रघुपति—गोविन्दमाणिक्यने।

जयसिंह—गोविन्दमाणिक्यने ? किसका अपमान किया है, प्रभु ?

रघुपति—किसका अपमान ! तुम्हारा, हमारा, सर्वशास्त्रका, सर्वदेशका, सर्वकालका, सर्वदेश-कालकी अधिष्ठात्री महाकालीका, सबका किया है अपमान तुच्छ सिंहासनपर बैठकर, माकी पूजा-बलि निषिद्ध कर दी है दम्भमें आकर !

जयसिंह—गोविन्दमाणिक्यने !

रघुपति—हाँ, हाँ, उसीने, तुम्हारे राजा गोविन्दमाणिक्यने ! तुम्हारे सर्वश्रेष्ठने, तुम्हारे प्राणोंके अधीश्वरने ! अकृतज्ञ ! बचपनसे पालन किया है मैंने तुझे, कितने स्नेहसे, कितने जतनसे,—आज मुझसे भी प्रिय हो गया तेरे लिए गोविन्दमाणिक्य !

जयसिंह—प्रभु, पिताकी गोदमें बैठा क्षुद्र मुग्ध बालक आकाशकी तरफ हाथ बढ़ाता है पूर्णचन्द्र पानेको;—देव, तुम पिता हो मेरे, पूर्णचन्द्र हैं महाराज गोविन्दमाणिक्य !—किन्तु यह क्या बक रहा हूँ मैं ! अभी-अभी क्या सुना मैंने ? माकी पूजाकी बलि रोक दी है राजाने ! यह आदेश कौन मानेगा !

रघुपति—जो नहीं मानेगा उसे निर्वासन-दण्ड दिया जायगा !

जयसिंह—मातृपूजा-हीन राज्यसे निर्वासन कोई दंड नहीं, प्रभु! मेरे ये प्राण रहते असम्पूर्ण नहीं रहेगी जननीकी पूजा।

चौथा दृश्य

राजअन्तःपुरमें गुणवती और परिचारिका

गुणवती—क्या कहा? मन्दिरके द्वारसे रानीकी पूजा वापस कर दी! एक देहपर कितने माथे हैं उसके? कौन है वह अभागा?

परिचारिका—कहनेकी हिम्मत नहीं होती—

गुणवती—कहनेकी हिम्मत नहीं, यह बात कही किस हिम्मतसे? मुझसे भी ज्यादा डर किसका है तुझे?

परिचारिका—क्षमा करो।

गुणवती—कल शामको मैं थी रानी, कल रातको बन्दीजन कर गये हैं स्तुति मेरी, विप्रगण दे गये हैं आशीर्वाद, भृत्य ले गये हैं आज्ञा हाथ जोड़कर, एक ही रातमें उलट गये सारे नियम? देवीने नहीं पाई पूजा, रानीकी महिमा मिल गई मिट्टीमें! त्रिपुरा क्या स्वप्न-राज्य था! जल्दी बुला ला पुरोहितजीको। [परिचारिकाका प्रस्थान

गोविन्दमाणिक्यका प्रवेश

गुणवती—महाराज, सुन रहे हो? माके द्वारसे मेरी पूजाकी बलि लौट आई?

गोविन्दमाणिक्य—जानता हूं मैं।

गुणवती—जानते हो तुम? निषेध नहीं किया फिर भी? जान-बूझकर महिषीका अपमान!

गोविन्दमाणिक्य—उसे क्षमा करो, प्रिये!

गुणवती—दयाका शरीर है तुम्हारा, महाराज, किन्तु यह तो दया नहीं,

यह तो सिर्फ कायरता है। दयासे दुर्बल हो तुम, अपने हाथसे अगर दण्ड न दे सको उसे, तो मैं दूँगी दण्ड। बताओ मुझे, कौन है वह अपराधी ?

गोविन्दमाणिक्य—देवी, मैं हूं। अपराध और-कुछ नहीं, तुम्हें दी है व्यथा, यही है अपराध मेरा।

गुणवती—क्या कहते हो, महाराज !

गोविन्दमाणिक्य—आजसे देवीके नामपर जीवोंका रक्तपात बन्द कर दिया गया है अपने राज्यमें।

गुणवती—किसने किया है बन्द ?

गोविन्दमाणिक्य—जननीने।

गुणवती—किसने सुना ?

गोविन्दमाणिक्य—मैंने।

गुणवती—तुमने ? महाराज, सुनके हँसी आती है। राज-द्वारपर आई थीं भुवनेश्वरी करने प्रार्थना !

गोविन्दमाणिक्य—हँसो मत रानी ! जननीने स्वय आकर सन्तानके प्राणोंमें वेदना जगा दी है, प्रार्थना नहीं !

गुणवती—रक्खो ये बातें अपनी, महाराज, मन्दिरके बाहर है तुम्हारा राज्य। जहां तुम्हारी आज्ञा नहीं चल सकती वहां आज्ञा न दिया करो।

गोविन्दमाणिक्य—माकी आज्ञा है, मेरी नहीं।

गुणवती—कैसे जाना ?

गोविन्दमाणिक्य—क्षीण दीपालोकमें अन्धकार रह जाता है एक जगह, सर्वत्र उजाला करता है दीप, पर अपनी छाया नहीं मिटा सकता वह। 'दिया तले अँधेरा'-जैसी ही बुद्धि है मानवकी; जितना ही उजाला करता है दान, उतनी ही सशयकी छाया रख छोड़ता है अपने लिए। स्वर्गसे जब उतरता है ज्ञान, तो क्षणमें सशय दूर हो जाता है। मेरे हृदयमें अब सशयका लेश भी नहीं।

गुणवती—सुना है अपना पाप-पुण्य अपने ही लिए होता है। तुम रहो अपने असशयको लेकर, मेरा द्वार छोड दो, अपनी पूजाकी बलि लेकर मैं जाऊँ माके द्वारपर।

गोविन्दमाणिक्य—देवी, जननीकी आज्ञा मैं उल्लघन नही कर सकता।

गुणवती—मैं भी नहीं कर सकती सत्य-भग। माके आगे प्रण किया है मैंने,—यथाशास्त्र यथाविधि पूजा करूंगी मैं उनकी। जाओ, तुम जाओ।

गोविन्दमाणिक्य—जो आज्ञा, महारानी। [प्रस्थान

रघुपतिका प्रवेश

गुणवती—पुरोहितजी, मेरी पूजा लौटा दी है माके द्वारसे ?

रघुपति—महारानी, तुम्हारी नहीं, माकी पूजा लौटाई गई है आज! उञ्छजीवो दरिद्रकी भिक्षा-लब्ध पूजा, राजेन्द्राणी, तुम्हारी पूजासे कम नहीं। किन्तु इतना बडा सर्वनाश कि माकी पूजा लौटाई गई! इतना बडा सर्वनाश कि राज-दर्प क्रमशः फूलकर कर रहा है उल्लघन जगत-राज्यकी सीमा, देवीका द्वार रोककर, जननीके प्रति आँखे निकालकर!

गुणवती—क्या होगा अब, पुरोहित ?

रघुपति—महामाया ही जानें! मैं तो सिर्फ इतना ही जानता हूँ कि जिस सिंहासनकी छाया पड़ी है माके द्वारपर, फूंकसे उड जायगा वह दम्भ-मत्त बुद्बुदकी तरह। युग-युगसे ऊपरकी ओर देखकर राज-पिता और पितामहोंने जिस राज-महिमाको किया है अभ्रभेदी, क्षणमे वह वज्रदीर्ण दग्ध झञ्झाहत होकर धूलमें मिल जायगी।

गुणवती—रक्षा करो, रक्षा करो प्रभु!

रघुपति—हाँ, हाँ, मैं रक्षा करूंगा तुम्हारी! जो प्रबल राजा स्वर्ग और मर्त्यमें प्रचार कर रहे हैं अपना शासन, तुम उन्हींकी रानी हो, देव-ब्राह्मण पर जो,—धिक्, धिक्, सहस्र धिक्! लाखो धिक्कार उसे। कलिके ब्राह्मणको

धिक ! ब्रह्म-शाप कहाँ है अब ! व्यर्थ ब्रह्मतेज सिर्फ अपने ही हृदयको वृश्चिक-सा डस रहा है आज, मिथ्या है ब्रह्म-आडम्बर ! (उपवीत छूनेको उद्यत)

गुणवती—क्या कर रहे हैं देव ! शान्त होओ, दया करो प्रभु, दया करो निर्दोषपर।

रघुपति—तो लौटा दे वह ब्राह्मणका अधिकार।

गुणवती—लौटा दूंगी। जाओ प्रभु, पूजा करो मन्दिरमें जाकर, नहीं होगा पूजामें कोई विघ्न।

रघुपति—जो आज्ञा, राज-अधीश्वरी ! देवी कृतार्थ हुई आज तुम्हारे आदेशके बलसे, वापस मिल गया फिर ब्राह्मणका तेज। धन्य रहोगी तुम, जब तक नहीं जागता कल्कि अवतार। [प्रस्थान

गोविन्दमाणिक्यका पुनःप्रवेश

गोविन्दमाणिक्य—अप्रसन्न प्रेयसीका मुख संसारमें सम्पूर्ण प्रकाश, सब सुख लुप्त कर रखता है, देवी। इसीसे उन्मन-सा उत्सुकचित्त लौट आया हूं मैं।

गुणवती—जाओ, जाओ, राज-अन्तःपुरमें न आओ राजन् ! अभिशाप न लाओ यहाँ।

गोविन्दमाणिक्य—प्रियतमे, प्रेम कर देता है नाश अभिशापका, दया कर देती है दूर अकल्याणको। सतीके हृदयसे प्रेम चला जाय तो पतिगृहमें लग जाता है अभिशाप। — तो जाऊँ, देवी !

गुणवती—जाओ। लौटकर अब न दिखाना मुख।

गोविन्दमाणिक्य—याद करोगी जब, आऊँगा मैं उसी क्षण।

[प्रस्थानोन्मुख

गुणवती (पैरों पड़कर)—क्षमा करो, क्षमा करो नाथ ! इतने निष्ठुर हो गये हो तुम, रमणीके अभिमानको धक्का देकर चले जाओगे ? जानते नहीं

क्या प्रियतम, व्यर्थ-प्रेम दिखाई देता है रोषका रूप धर छद्मवेशमें ? अच्छा, मानती हूं मैं, अपने अभिमानसे अपना ही अपमान किया है मैंने, क्षमा करो।

गोविन्दमाणिक्य—प्रियतमे, तुमपरसे उठते ही विश्वास, उसी क्षण टूट जाता यह जीवन-बन्धन। जानता हूं प्रिये, मेघ क्षणिक हैं, सूर्य है चिरकालका।

गुणवती—मेघ हैं क्षणस्थायी। बादल ये दूर होंगे, विधाताका उद्यत बज्र लौटेगा यथास्थान, चिरकालका सूर्य उदित होगा फिर चिरकालकी प्रथा जगाकर, अभय पायेगा फिर विश्व सारा, भूल जायगा वह क्षण-भरका दुःस्वप्न! ऐसी ही आज्ञा करो, नाथ! ब्राह्मण पा जायें फिर अपना अधिकार, देवी ग्रहण करें अपनी पूजा, राजदण्ड लौट आये अपने अप्रमत्त मर्त्य-अधिकारमें।

गोविन्दमाणिक्य—धर्मकी हानि करना ब्राह्मणका अधिकार नहीं, देवी! असहाय जीवोंका रक्त नहीं है देवीकी पूजा। देवताका आदेश पालन करना राजा और विप्र सभीका धर्म है।

गुणवती—भिक्षा, भिक्षा चाहती हूं मैं। एकाग्रमनसे प्रार्थना है मेरी तुम्हारे चरणोंमें, नाथ! चिरागत प्रथा चिरप्रवाहित मुक्त पवनके समान है, राजाका धन नहीं वह, – तो भी, हाथ जोड़कर समस्त प्रजाके नामपर भीख माँगती है रानी तुम्हारी! प्रेमकी दुहाई मानो प्रियतम! विधाता भी करेंगे क्षमा प्रेम-आकर्षण-वश की गई कर्त्तव्यकी त्रुटिको।

गोविन्दमाणिक्य—यही क्या उचित है, महारानी? नीच स्वार्थ, निष्ठुर क्षमता-दर्प, अन्ध अज्ञानता, चिर रक्त-पानसे फूली-हुई हिंस्र वृद्ध प्रथा, सहस्र शत्रुओंसे अकेला जूझकर, श्रान्त ले अपना देह-मन, आता हूं अपने घर, नारी-चित्तसे करने अमृत-पान; यहाँ भी नहीं है दयाकी सुधा? घरमें बहता है पुण्य-प्रेम, उसमें भी मिल गई रक्तधारा? इतना रक्तस्रोत किस दैत्यने बहाया है! भक्ति और प्रेममें भी रक्त सन गया, क्रूर हिंसाने दयामयी रमणीके हृदयमें लगा दी खूनकी छाप! फिर भी, न रोकूं उस खूनको?

मुणवती (मुँह ढककर)—जाओ, जाओ तुम।

गोविन्दमाणिक्य—हाय, महारानी, कर्तव्य कठिन हो जाता है रमणीके मुँह फेरनेसे। [प्रस्थान

गुणवती (रो उठी)—अरी ओ अभागिनी, अब तक यह कैसी भ्रान्ति पोस रही थी मनमे! रंच भी न संशय था,—व्यर्थ होगा आज इतना विनय, इतना अनुरोध, इतना अभिमान। धिक, किस सुहागसे पुत्रहीना करती है पतिसे अभिमान! भस्म हो अभिमान तेरा। जले भाग्य, राख हो जाय रानीका गौरव। व्यर्थ है प्रेमका खेल, व्यर्थ है सुहागका रोना। समझ लिया स्थान अपना,—या तो धूलमें लुटा अपना सिर, या फिर उठा फन, भुजंगिनी बन दिखा तेज अपना!

पाँचवाँ दृश्य

मन्दिर

कुछ लोगोंका प्रवेश

नेपाल—कहाँ है जी, तुम्हारे तीन सौ बकरे और एक सौ भैंसे! यहाँ तो छिपकलीकी कटी पूँछ भी नहीं दिखाई देती! बाजा-वाजा सब गये कहाँ, सब सुनसान पडा हुआ है! गाँठसे खर्च करके पूजा देखने आये, खूब सजा मिली!

गणेश—देख, मन्दिरके सामने खडा होकर ऐसी बात न निकाल मुँहसे! माको बलि नहीं मिली, मा तुरत जागकर तुम्हींमेसे एक-एकको पकडके ठूस लेगी अपने मुँहमे।

हारू—क्यों! गये-साल कहाँ थे सब? और उस साल, जब व्रत पूरा करके रानी-माने पूजा चढ़ाई थी, तब क्या तुमलोगोंके पाँवमे काँटे चुभे थे? तब तो नहीं आये कोई पूजा देखने? खूनसे गोमती लाल हो गई

थी। तुमलोगोंको एक-एकको पकड़कर माके आगे चढा दिया जाय तब मेरे मनकी जलन मिटे।

कानू—अरे भइया, झूठे ही गुस्सा होते हो। हमारा क्या अब कुछ कहने-लायक मुँह रह गया है ? नहीं तो भला खडे-खड़े इसकी बातें सुनते।

हारू—ठीक कह रहे हो भइया, जरा-सेमे मुझे गुस्सा आ जाता है। उस दिन यह 'साला' तक चढा था, उससे ज्यादा एक बात भी निकालता न मुहसे, या बदनसे हाथ छुआता न, तो तुम्हारी कसम, फिर मैं—

नेपाल—अच्छा ! अच्छा तो आ जा, देखूँ किसने कितना माका दूध पिया है !

हारू—आ न, आता क्यों नहीं ? होश है, यहाँके थानेका जमादार मेरा ममेरा-भाई लगता है !

नेपाल—तो ले आ उसे भी, अपने मामाको भी ले आ, उसके भी होश ठिकाने कर दूगा।

हारू—तुमलोगोने सुन लिया न !

गणेश और कानू—छोडो इस झमेलेको, चलो घर चलें। आज अब कुछ अच्छा नहीं लगता। छोड़ो इस मजाकको।

हारू—मजाक है यह ? मेरे मामाकी बेइज्जती ! खुद हमारे जमादारके बापकी—

गणेश और कानू—अरे, छोड़ अपने मामाको। उधर देख, कौन-कौन आ रहे हैं ! [सबका प्रस्थान

रघुपति, नयनराय और जयसिंहका प्रवेश

रघुपति—मापर भक्ति नहीं है तुम्हारी ?

नयन राय—किसकी मजाल है जो कहे ऐसी बात ! भक्त-वशमें जन्म है मेरा।

रघुपति—साधु, साधु! तो तुम माके सेवक हो, हमारे ही आदमी हो।

नयन राय—प्रभु, जो मातृभक्त हैं मैं उन्हींका दास हूं।

रघुपति—साधु! भक्ति तुम्हारी अक्षय हो। भक्ति तुम्हारी भुजाओंमें सचार करे अति दुर्जय शक्ति। भक्ति तुम्हारी तलवारमें सान चढ़ावे, और दे उसे वज्र-जैसा तेज! भक्ति तुम्हारे हृदयमें सदा वास करे। पदकी मर्यादा सबसे ऊँची है।

नयन राय—ब्राह्मणका आशीर्वाद व्यर्थ नहीं होगा।

रघुपति—तो सुनो, सेनापति, तुम अपना सारा बल इकट्ठा करके चढाओ माके चरणोंमें। नष्ट कर दो, भ्रष्ट कर दो मातृ-विद्रोहीको।

नयन राय—आदेश दो, प्रभु! कौन है माका शत्रु?

रघुपति—गोविन्दमाणिक्य?

नयन राय—हमारे महाराज?

रघुपति—लेकर अपनी सेना, आक्रमण कर दो उसपर।

नयन राय—धिक् है इस पाप-परामर्शको। प्रभु, यह कैसी परीक्षा कर रहे हो मेरी?

रघुपति—हाँ, है तो परीक्षा ही। किसके सेवक हो तुम, अबकी बार परीक्षा होगी इसकी। छोड़ो चिन्ता, छोड़ो दुविधा, समय नहीं है अब, त्रिपुरेश्वरीकी आज्ञा ध्वनित हो रही है प्रलयकी भेरी-सी! टूट चुके हैं आज समस्त बन्धन!

नयन राय—चिन्ता नहीं, दुविधा नही कोई। जिस पदपर रक्खा है देवीने मुझे, उसपर मैं अटल रहूंगा।

रघुपति—साधु!

नयन राय—इतना नराधम हूं मैं जननीके सेवकोंमें,—मेरे ऊपर ऐसी आज्ञा क्यों? मैं हो जाऊँ विश्वासघातक! स्वयं खड़ी हैं विश्वमाता, हृदयके विश्वासपर, वही है उनका अटल आसन,—देवी खुद ही कहेंगी

उसे तोड़नेको अपने मुहसे ? तब तो फिर आज जायगा राजा, कल जायगी देवी,—मनुष्यत्व टूटकर धूलमें मिल जायगा, खोखली नींववाले महलकी तरह।

जयसिंह—धन्य है सेनापति, धन्य है।

रघुपति—तुम भी धन्य हो। किन्तु यह कैसी भ्रान्ति तुममें ? जो राजा विश्वासघाती है जननीके समक्ष, उसके साथ विश्वासका बन्धन रहा कहाँ ?

नयन राय—क्या होगा झूठा तर्क करके ? बुद्धिके कुटिल चक्रमें मैं नहीं पड़ना चाहता। मैं जानता हूं, एक ही मार्ग है, वह है विश्वासका मार्ग। उसी एक सीधे मार्गसे चिरदिन चला चलेगा अबोध अधम सेवक यह नयनराय।

[प्रस्थान

जयसिंह—चिन्ता किस बातकी, देव ? अपने विश्वासके बलपर हम भी करेंगे काम। डर किसका, प्रभु ? सैन्य-बलका काम क्या ? अस्त्र है क्या चीज ! जिसपर जिस कामका भार है, उसीमें बल है उस कामका। करके रहेंगे हम माकी पूजा, अगर माके सच्चे सेवक हो हम। चलो प्रभु, बजायें माका डंका, बुला लायें पुरवासियोंको। मन्दिरका द्वार खोल दें।—अरे, आओ रे, आओ सब, कहो, 'अभयाकी पूजा होगी'—निर्भय होकर आओ रे, तुम माकी सन्तान हो ! आओ पुरवासियो !

[जयसिंह और रघुपतिका प्रस्थान

पुरवासियोंका प्रवेश

अक्रूर—आओ, आओ, चले आओ सब-कोई।

सबके सब—जय माताकी जय !

हारू—आओ रे, माताकी सन्तान, दोनों हाथ उठाकर नाचें, आओ

नृत्य-गीत

हो,—नाच रही, नाच रही मत्ता दिगम्बरी,
हाँ,—नाचेंगे हम भी सँग माता भयङ्करी !

दश-दिश कर अन्धकार मत्त हुई दिग्वसना,
जलती ज्यों वह्निशिखा लपक रही है रसना।
देख-देख मरनेको दौड़ पड़े एकसङ्ग,
आकुल हो पड़ते जा दीपकमें ज्यों पतङ्ग।
नभमे उड़ें केश कारे,
सूर्य छिपे डरके मारे।
(तेरे) बहती रक्तधारा अङ्ग,
त्रिलोक काँपे एकसङ्ग।
हो,—नाच रही, नाच रही मत्ता दिगम्बरी,
हाँ,—नाचेंगे हम भी सँग, माता भयङ्करी!

सबके सब—जय माताकी जय!

गणेश—अब कुछ नहीं डर।

कानू—अरे, वे दक्खिनदहके आदमी सब गये कहाँ?

गणेश—माकी महिमा बच्चुओंसे सही नहीं गई,—भाग गये!

हारू—सिर्फ माकी महिमा नहीं, मैंने उन्हे ऐसा कसके डाट दिया है कि बच्चुओंको छठीका दूध याद आ गया है, अब इधर मुँह भी नहीं करनेके। समझे अक्रूर भइया, मेरे भाई जमादारका नाम सुनते ही उनके चेहरे उतर गये थे।

अक्रूर—हमारे निताईने उस दिन उनलोगोंको खूब कड़ी-कडी बातें सुना दी थीं। वो जो है न, जिसका छछूँदर-सा मुँह है, वो आया था झपटके उत्तर देने, हमारे निताईने कहा, 'अरे तू दक्षिणदहका रहनेवाला, तू उत्तरका क्या जाने!' सुनके हमलोग तो हँसते-हँसते लोटपोट हो गये।

गणेश—ऐसे तो निताई भला-मानस है, पर बातोंमें उससे कोई नहीं जीतनेका।

हारू—निताई मेरा फूफा लगता है।

कानू—सुनो इसकी बात,–निताई तेरा फूफा कबसे हुआ ?

हारू—तुमलोग तो मेरी हर बातमें पेच निकालते हो। अच्छा, मेरा फूफा न सही, तेरा ही सही। तुझे इससे मतलब ?

रघुपति और जयसिंहका प्रवेश

रघुपति—सुना है सेना आ रही है। जयसिंह, तुम अस्त्र लेकर यहाँ खड़े होओ। तुमलोग भी आओ, यहाँ खड़े हो जाओ। सब मिलके मन्दिरके द्वारकी रक्षा करना। तुमलोगोंके लिए हथियार भिजवाता हू।

गणेश—हथियार! हथियार क्यों महाराज ?

रघुपति—माताकी पूजा बन्द करनेके लिए राजाकी सेना आ रही है।

हारू—सेना आ रही है! महाराज, दण्डवत करता हूँ।

कानू—हम हैं ही कितने, फौज आयेगी तो हम क्या कर सकते हैं ?

हारू—कर तो सब-कुछ सकते हैं, पर फौज आयेगी तो यहाँ इतनी जगह कहाँ है ? लड़ना तो दूर रहा, यहाँ खड़े कहाँ होंगे ?

अक्रूर—फालतू बात छोड़ो। देखते नहीं, महाराज मारे गुस्सेके काँप रहे हैं!–हाँ तो, महाराज, आज्ञा दें तो हम अपना दल-बल समेत तैयार होकर आवें ?

हारू—हाँ, यही ठीक होगा। साथ ही मैं अपने ममेरे-भाईको भी लेता आऊँगा। पर, अब देर करना ठीक नहीं। [सब जाना चाहते हैं

रघुपति (क्रुद्ध होकर)—ठहरो तुमलोग।

जयसिंह (हाथ जोड़कर)—जाने दो प्रभु, इनलोगोंको। प्राणोंके डरसे काँप रहे हैं ये मूर्ख। मरनेके पहले ही मर चुके हैं। मैं हूं माका सैनिक एकमात्र। एक शरीरमें सहस्र सेनाका बल लिये-हुए मैं अकेला ही लड़ूगा। अस्त्रकी जरूरत नहीं। डरपोकोंको जाने दो।

रघुपति (स्वगत)—वह जमाना चला गया। अब अस्त्र चाहिए, सिर्फ

भक्तिसे काम नहीं चलेगा। (जयसिंहसे) – तो लाओ वलि, जयसिंह, पूजा शुरू कर दो।

बाहर बाजे बजते हैं

जयसिंह—सेना नहीं प्रभु, रानीकी तरफसे पूजा आ रही है।

रानीके अनुचर और पुरवासियोंका प्रवेश

बहुतसे लोग—अरे, डरनेकी कोई बात नहीं! फौज नहीं, माकी पूजा आ रही है।

हारु—खबर लग गई मालूम होता है कि हमलोग यहाँ मौजूद हैं। अब फौज जल्दी नहीं आनेकी।

कानू—महाराज, रानी-माने पूजा भेजी है।

रघुपति—जयसिंह, शीघ्र पूजाका आयोजन करो।

[जयसिंहका प्रस्थान

पुरवासियोंका नृत्य-गीत और राजाका प्रवेश

राजा—चले जाओ यहाँसे, ले जाओ वलि! रघुपति, सुना नहीं मेरा आदेश?

रघुपति—नहीं सुना।

राजा—तो तुम इस राज्यके नहीं।

रघुपति—मैं नहीं इस राज्यका! मैं जहाँ हूं, वहाँ आनेसे राजदण्ड खिसक पड़ेगा हाथसे, राज-मुकुट धूलमें लुढ़कता फिरेगा। कौन हो, लाओ माकी वलि!

वाजे वजने लगते हैं

राजा—वन्द करो वाजे! (अनुचरके प्रति) – कहाँ है सेनापति, बुलाओ। हाय, रघुपति, आखिर सेनासे घेरना पड़ा धर्मको! लज्जा होती है सेना बुलानेमें, वाहुवल दुर्वलताकी ही याद दिलाता है।

रघुपति—हाय अविश्वासी, सचमुच ही क्या तुम समझ बैठो हो कि कलियुगमें ब्रह्मतेज नष्ट हो गया है, इसीसे इतना दुःसाहस है ? नहीं हुआ नष्ट। जो आग भीतर जल रही है, तुम्हारे सिंहासनको वह जलाकर भस्म कर डालेगी। अन्यथा, उस महानलसे जलाकर भस्म कर दूंगा सब शास्त्रोंको, सम्पूर्ण ब्रह्मगर्वको, समस्त तीस कोटि देवताओंको। आज नहीं हो तुम महाराज, राजाधिराज, आजका दिन तुम्हे आजीवन याद रखना पड़ेगा।

राजा (नयन रायसे)—अपनी सेनाके साथ यहाँ तैनात रहो तुम, जीव-वलि रोकनेके लिए।

नयन राय—क्षमा करो महाराज, इस अधम किंकरको। अक्षम है राजाका सेवक यहाँ देवीके मन्दिरमे। जहाँ तक जा सकता है राजाका प्रताप, हम उनके साथ ही रहते हैं छायाकी तरह, किन्तु—

चाँदपाल—बस, बस, सेनापति ! दीपशिखा रहती है एक जगह, किन्तु उसका प्रकाश जाता है दूर तक। राज-इच्छा जहाँ जायगी वहीं जायँगे हम।

राजा—सेनापति, मेरा आदेश तुम्हारे विचाराधीन नहीं। धर्म-अधर्म, हानि-लाभ सब मेरा है, तुम्हारा काम है सिर्फ राज-आज्ञा पालन करना।

नयन राय—इन बातको हृदय नहीं मानता, महाराज ! सेवक जरूर हूं किन्तु फिर भी आदमी हूं। बुद्धि है, विवेक है, धर्म है, – महाराज प्रभु हैं, सब-कुछ हैं, – किन्तु देवता भी हैं मेरे !

राजा—तो रख दो अस्त्र। चाँदपाल, तुम्हें किया जाता है सेनापति, दोनों पद सम्हालो एकसाथ। सावधानीसे रक्षा करो मन्दिरकी।

चाँदपाल—जो आज्ञा, महाराज।

राजा—नयन राय, सौंप दो अपने अस्त्र चाँदपालको।

नयन राय—चाँदपालको ? क्यों महाराज ? ये अस्त्र तुम्हारे पूर्व राजपितामहोने दिये हैं हमारे पितामहोको। लेना चाहे तो स्वय राजा ले

सकते हैं ।—हे पितृ पितामहगण, स्वर्गमें हो तुमलोग, साक्षी रहो तुम सब, आज तक जिस राज-विश्वासकी रक्षा करते आये हैं हम, सम्पूर्ण काय-मन-वाक्यसे, साग्निककी पुण्य-अग्निके समान, आज उनका धन हम उन्हींको सौंप रहे हैं निष्कलक ।

चाँदपाल--मेरी बात सुनो भाई !

नयन राय—धिक्, धिक् तुम्हे ! चुप रहो ! महाराज, विदा होता हूं ।

[नमस्कार करके प्रस्थान

राजा--स्नेहके लिए कोई स्थान नहीं राजकार्यमें । देवताका कार्यभार आ पडा तुच्छ मनुष्यपर, हाय, कैसा कठोर है कर्तव्य !

रघुपति—इसी तरह ब्रह्म-शाप फलता है ! विश्वासी-हृदय चले जाते हैं दूर धीरे-धीरे, नीचेको धसक जाता है खड़े होनेका स्थान ।

जयसिंहका प्रवेश

जयसिंह—आयोजन हो गया पूजाका । तैयार है वलि !

राजा—वलि किसके लिए ?

जयसिंह—महाराज, तुम यहाँ ! तो, सुनो मेरी प्रार्थना, मेरी बिनती है इन चरणोंमे, प्रभु, उठा लो अपना गर्वपूर्ण आदेश । मानव होकर आड़े न आओ देवताके !

रघुपति—धिक् धिक् जयसिंह ! उठो, उठो । किसके चरणोंमें पड रहे हो तुम ? मैं जिसका गुरु हू, ससारमे उसका मस्तक सिर्फ एक ही जगह झुक सकता है, अपने गुरुके चरणोंमे । मूढ, उठा मस्तक, गुरुके चरणोमें क्षमा मांग । राजाका आदेश लेकर करेंगे हम देवीकी पूजा ! कराल कालिका, क्या इतना पतन हो गया है तेरा ? रहने दो पूजा, रहने दो वलि, देखूंगा राजाका दर्प कब तक रहता है ! चले आओ जयसिंह, चले आओ ।

[रघुपति और जयसिंहका प्रस्थान

राजा—विनय क्या संसारमें रहा ही नहीं कहीं ? महादेवी, जो तुम्हारे ही चरण-तले विचरण करते हैं अहोरात्र, उन्होने भी नहीं सीखा, हाय, कि कितने क्षुद्र असहाय हैं वे ? तुम्हारी महिमा हरण करके भी वे अपने काय-मन-वाक्यमे इतना अहकार वहन करते हैं ! [प्रस्थान

—

दूसरा अंक

पहला दृश्य

मान्दिरमें रघुपति जयसिंह और नक्षत्रराय

नक्षत्र राय—किस लिए बुलाया है गुरुदेव ?

रघुपति—कल रातको सपना दिया है देवीने, तुम राजा होंगे !

नक्षत्र राय—मैं होऊँगा राजा ! हः हः हः ! कहते क्या हो पुरोहित ! यह तो बिलकुल नई बात सुनाई, मैं होऊँगा राजा !

रघुपति—हाँ, तुम होंगे राजा !

नक्षत्र राय—असम्भव ! भला कैसे हो सकता है यह ?

रघुपति—देवीका स्वप्न सत्य है। राज-मुकुटके अधिकारी होगे तुम। इसमें कोई भी सन्देह नहीं।

नक्षत्र राय—कोई भी सन्देह नहीं ! किन्तु अगर न हुआ राजा, तो ?

रघुपति—मेरे वचनोपर अविश्वास ?

नक्षत्रराय—अविश्वासकी बात नहीं महाराज, दैवसे अगर न हुआ तो—

रघुपति—इसमे अन्यथा नहीं हो सकता।

नक्षत्र राय—अन्यथा नहीं हो सकता ? देखना महाराज, वचन निभाना आखीर तक। राजा होकर पहले तो मन्त्रीको हटाऊँगा। हमेशा उसकी मुझ ही पर नजर रहती है, जैसे वह बापका बाबा हो ! बडा डर लगा रहता है उसका समझे, महाराज,—तुम्हे बनाऊँगा मन्त्री।

रघुपति—मन्त्रित्वपर पदाघात करता हूं मैं।

नक्षत्र राय—अच्छा, जयसिंह होगा मन्त्री। किन्तु महाराज, अगर आप सब-कुछ जानते हैं तो बताइये भला, कब होऊँगा मैं राजा ?

रघुपति—राज-रक्त चाहती हैं देवी!

नक्षत्र राय—राज-रक्त चाहती हैं देवी!

रघुपति—राज-रक्त लाओ पहले, तब हो'गे राजा।

नक्षत्र राय—कहाँ पाऊँगा राज-रक्त ?

रघुपति—घरमें हैं गोविन्दमाणिक्य, उन्हींका रक्त चाहिए।

नक्षत्र राय—उन्हींका रक्त चाहिए!

रघुपति—स्थिर रहो जयसिंह, चंचल न होओ।—समझे कुछ ? सुनो बताता हूं, गुप्तरूपसे जो राजाका वध करके चढ़ायेगा राज-रक्त देवीके चरणोंमें, — जयसिंह, स्थिर अगर न रह सको तो चले जाओ अन्यत्र कहीं! समझे नक्षत्र राय, देवीका आदेश है, राज-रक्त चाहिए, श्रावणकी शेष रात्रिमे। तुम दोनों हो राज-भ्राता, बड़ा अगर बच गया तो तुम्हारा रक्त है। महाकाली रक्तकी प्यासी हैं, विचार करनेका समय नहीं अब।

नक्षत्र राय—भीषण भयकर प्रस्ताव है तुम्हारा! महाराज, जरूरत नहीं मुझे राज्यकी। राजाका खून राजाकी ही देहमें बना रहने दो, मैं जैसा हूं वैसा ही ठीक हू।

रघुपति—नहीं, नहीं, मुक्ति नहीं मिल सकती किसी भी हालतमे। राज-रक्त लाना ही होगा।

नक्षत्र राय—तो बताओ प्रभु, क्या करना होगा मुझे ?

रघुपति—तैयार रहो सदा। जब जैसा कहूँ, शीघ्र ही पूरा करना उस कामको। और जब तक कार्य सिद्ध न हो, मुँह रखना बन्द। अब जाओ।

नक्षत्र राय—हे मा कात्यायनी! [प्रस्थान

जयसिंह—यह क्या सुना इन कानोंसे! दयामयी माता, यह कैसी

बात ! तेरी आज्ञा है यह ! भाईके हाथ भाईकी हत्या ! विश्वकी जननी है तू ! — गुरुदेव ! ऐसी आज्ञाको मातृ-आज्ञा कहते हो !

रघुपति—और उपाय क्या है बताओ ?

जयसिंह—उपाय ! कैसा उपाय, प्रभु, किसका उपाय ? हाय, हाय, धिक्कार है ! जननी, क्या तुम्हारे हाथमें खड्ग नहीं ? तुम्हारे क्रोधमें वज्रानल नहीं ? तुम्हारी इच्छा आज उपाय खोज रही है ! ढूढ़ रही है रसातलगामी सुरंगका पथ, चोरकी तरह ! यह कैसा पाप !

रघुपति—पाप-पुण्यका तुम क्या जानो, बालक ?

जयसिंह—तुम्हींसे तो सीखा है सब-कुछ ।

रघुपति—तो आओ वत्स, और-एक शिक्षा दूँ तुम्हे । पाप-पुण्य कुछ नहीं । कौन किसका भाई है और कौन किसका अपना-पराया ? किसने कहा कि हत्याकाण्ड पाप है ? यह जगत महाहत्याशाला है । जानते नहीं क्या, कि प्रतिक्षण लाखों-करोड़ो प्राणी मौतके मुँहमे जाते हैं । यह किसका खेल है ? हत्यासे मढी-हुई है इस धरणीकी धूल । पद-पदपर चरण-तले दलित हो रहे हैं सैकड़ों कीट, वे क्या जीव नहीं ? रक्तके अक्षरोंमे अविश्राम लिखते जा रहे हैं वृद्ध महाकाल विश्व-पत्रपर जीवोंका क्षणिक इतिहास । वनमे हत्या, नगरमे हत्या, विहगके नीडमें हत्या, कीटके गह्वरमें हत्या, अगाध समुद्र और निर्मल आकाशमे हत्या, सर्वत्र चल रही है हत्या । जीविकाके लिए, खेलके लिए, कारण-अकारणसे, इच्छा-अनिच्छासे, हत्याकी ताडना ही तो निखिल-विश्वको महाचक्रकी तरह घुमाती चली जा रही है । महाकाली कालस्वरूपिणी खड़ी हैं रक्त-पिपासु लाल-जिह्वा निकाले ! विश्वकी दसों दिशाओंसे चिर-रक्तधारा फटी पड़ती है उनके अनन्त खर्परमें, निष्पेषित द्राक्षासे जैसे रस निकलता है—

जयसिंह—बस बस, शान्त होओ, देव !—मायाविनी, पिशाचिनी, मातृहीन इस संसारमे तू आई है माके छद्मवेशमे रक्त पीनेके लोभसे ? हाय, क्षुधित

विहग-शिशु अरक्षित नीड़में बैठे देखा करते हैं माकी राह, वहाँ पहुँच जाता है लुब्ध काक, व्यग्रकण्ठसे अन्धे बच्चे 'मा' समझकर पुकारते हैं उसे, गँवाते हैं कोमल प्राण अपने, निरीह बेचारे, हिंसक शिकारीकी चोंचकी चोटसे ! तेरा भी क्या वही व्यवसाय है निष्ठुरे ! प्रेम झूठा, स्नेह झूठा, दया झूठी, झूठा है और सब-कुछ, सत्य है सिर्फ अनादि-अनन्त हिंसा ! तो, क्यों मेघसे झरती है आशीर्वाद-सी वृष्टिकी धारा दग्ध धरणीकी छातीपर ? तो क्यों पाषाणसे गल-गलके आती है दयामयी स्रोतस्विनी मरुभूमिपर, क्यों फूल खिलते हैं काँटोंके बीच ? छलना कर रहे हो तुम मुझसे प्रभु ! देखना चाहते हो, मातृभक्ति मेरी, रक्तके समान, हृदय चीरकर फूट निकलती है या नहीं ? मेरे ही हृदयकी, हाय, तुमने वलि चढ़ा दी मातृचरणोंमे । वो देखो, हँस रही है मा मेरी स्नेह-परिहाससे । सच है, तू राक्षसी पाषाणी ही है, मा मेरी रक्त-पिपासिनी है । लेगी मा, मेरा रक्त ? मिटायेगी सन्तानका जन्म इस जन्मके लिए ? भोंक दूँ छुरी अपनी छातीमें ? इस सन्तानका रक्त अच्छा लगेगा तुझे ? हाँ हाँ, मा मेरी है तो राक्षसी पाषाणी ही !—बुला रहे हो मुझे, गुरुदेव ? छलना समझ गया मैं तुम्हारी । भक्त-हृदय-विदारित रक्त चाहते हो तुम ! दी थी अभी जो वेदना तुमने, उसपर जननीका स्नेह आ पड़ा है । दुःखसे सुख हो उठा है सौगुना । किन्तु राज-रक्त ! छि-छि, भक्ति-पिपासिता माता, उसे कहते हो तुम रक्त-पिपासिनी !

रघुपति—तो वन्द हो वलिदान !

जयसिंह—वन्द हो वलिदान । नहीं, नहीं, गुरुदेव, तुम्हीं जानो भलाई बुराई । सरल भक्तिकी विधि शास्त्रकी विधि नहीं । अपने आलोकसे आँखें कुछ नहीं देख सकतीं, आलोक आता है आकाशसे । प्रभु, क्षमा करो, क्षमा करो दासको । क्षमा करो मूढ़ताकी स्पर्धाको । क्षमा करो वेदनाके आवेशसे निकले-हुए उद्भ्रान्त प्रलापको । बताओ प्रभु, सचमुच क्या राज-रक्त चाहती हैं महादेवी ?

रघुपति—हाय, वत्स, आखिर अविश्वास मेरे प्रति ?

जयसिंह—अविश्वास! हरगिज नहीं। तुम्हें छोड दूँ तो विश्वास मेरा खडा कहाँ होगा? वासुकिके मस्तकसे च्युत वसुधाकी तरह शून्यसे शून्यमें हो जायगा लुप्त!—तो राज रक्त चाहती है महामाया! मैं चढाऊँगा राज-रक्त! होने न दूँगा भ्रातृहत्या।

रघुपति—देवताका आदेश पाप नहीं।

जयसिंह—तो पुण्य है, मैं ही करूँगा उस पुण्यका अर्जन।

रघुपति—तो सच कहता हूँ वत्स! तुझे मैं प्राणोंसे भी अधिक चाहता हूँ। बचपनसे पाला है मैंने तुझे मासे भी अधिक स्नेहसे, तुझे नहीं गँवा सकता।

जयसिंह—तो उस स्नेहमे मैं पापकी छाया न पडने दूँगा, अभिशाप न पडने दूँगा उस स्नेहपर।

रघुपति—अच्छा अच्छा, पीछे होंगी ये सब बातें,—जो करना है, कल करेंगे निर्णय उसका। [दोनोका प्रस्थान

दूसरा दृश्य

मन्दिरमें अपर्णा

गीत

सुनो सुनो, हे जगके वासी,
द्वार खडा मन है उपवासी।

अपर्णा—जयसिंह, कहाँ है जयसिंह! यहाँ तो कोई भी नहीं। तुम कौन खडी हो वहाँ, अचल स्थिर-मूर्ति! नीरव स्तब्ध खडी हरण कर रही हो ससारका सार-धन सारा! ससारके और-सब जिसके लिए दीन कंगाल बने इधर-उधर भटकते फिरते हैं, वह स्वय आकर तुम्हारे चरणोंमे कर रहा है आत्मसमर्पण! उससे तेरा क्या प्रयोजन? क्यों तूने उसे कृपणके धनकी

तरह गाड़ रखा है मन्दिरके नीचे, — दरिद्र इस संसारके सर्व-व्यवहारसे छिपाकर? जयसिंह, यह पाषाणी क्या सुख देती है तुम्हें, क्या बात करती है तुमसे, — हृदयके गुप्त पात्रमें कौनसी सान्त्वना-सुधा उँड़ेला करती है दिन-रात? अरे ओ उपवासी चित्त, किसके रुद्ध द्वारपर आ बैठा है तू?

गीत

सुनो सुनो, हे जगके वासी,
द्वार खड़ा मन है उपवासी।
देख रहा वह सुखका मेला,
नश्वर है इस जगका खेला,
मरता जीता जीव अकेला,
साथ न जाता पैसा-धेला,
दुखदायी है धनकी फाँसी,
सुनो सुनो, हे जगके वासी!

रघुपति—कौन है तू, इस मन्दिरमें?

अपर्णा—भिखारिन हूं मैं। जयसिंह कहाँ है?

रघुपति—दूर हो यहाँसे, मायाविनी! जयसिंहको छीनना चाहती है देवीके हाथसे तू उपदेवी!

अपर्णा—मुझसे देवीको क्या डर? मैं डरती हूं उससे, कहीं वह मेरा सब-कुछ लुप्त न कर ले।

नश्वर है धन, नश्वर जीवन,
ठाना क्यों फिर हिंसाका रण?
बीच-बीच बिजली-सी चमके,
खुलती आँखें भीतर मनके।

मधुर बाँसुरी बजती रहती,
'जाना है, न रहना' कहती।
फेंक फेंक पशुताका बाना,
दुख ही दुख हैं इसमें नाना।
जलमें रहती मीन पियासी,
सुनो सुनो, हे जगके वासी !

तीसरा दृश्य

मन्दिरके सामनेका रास्ता

जयसिंह—दूर हो यह चिन्ता-जाल। दूर हो दुविधा-संशय। चिन्ताके नरकसे कर्म अच्छा, चाहे वह कितना ही क्रूर, कितना ही कठोर क्यों न हो। कामका अन्त है, चिन्ताकी सीमा नहीं कहीं भी। पल-पलमें धारण करती है वह हजारों मूर्ति, भापकी तरह। चारों ओर जितना ही ढूँढती है मार्ग निकलनेका, उतना ही मार्ग हो जाता है लुप्त। एक अच्छा अनेकसे। तुम्हीं सत्य हो गुरुदेव, तुम्हारा ही आदेश सत्य है,—सत्य-पथ है तुम्हारे ही इङ्गितमें। हत्या पाप नहीं, भ्रातृहत्या पाप नहीं, राज-हत्या पाप नहीं ! यही सत्य है, यही सत्य है। पाप-पुण्य कुछ भी नहीं, यही सत्य है। दूर हो चिन्ता, दूर हो आत्मदाह, विचार-विवेक दूर हो मनसे।—कहाँ जा रहे हो भाइयो, मेला होगा शायद निशिपुरमें ?—कुकी-रमणियोंका नृत्य होगा ? मैं भी चलता हूँ।—इस धरातलमें कितना सुख है ! निश्चिन्त आनन्दमें नृत्य करती हैं नारियाँ,—मधुराङ्गनाओंका रङ्ग-भङ्ग उच्छ्वसित हो उठता है चारों तरफ, तटप्लाविनी तरंगिनीके समान ! निश्चिन्त आनन्दसे सब दौड़ी आती हैं चारों तरफसे,—उठता है गीतोंका फव्वारा, बहता है हास्य-परिहासका झरना, मानो धरणीकी शोभा उज्ज्वल मूर्ति धारण करके मधुर नृत्य कर रही हो ! मैं भी चला वहीं।

गीत

जो मुझको ले अपना मान,
उसे करूँ मैं अपना दान।
मन बहलाके
काम भुलाके
लेके साथी अपने साथ,
दान करूँ मैं हाथों - हाथ।
जाते तुम क्या रूप-हाटमें ?
मैं पिछडा इस पार घाटमे।
हँसी-भरे मुँह देखे जबसे,
हुआ चपल मन मेरा तबसे।
नई भले ही हो पहचान,
तुरत करूँ मैं अपना दान।
बाधाओं के टूटे तार,
मनका बोझा मनका भार
पड़ा रहे सब घरके द्वार,
आ जा री तू क्षणकी बाढ,
त्वरा बहा ले चल उस पार।
लगा गलेसे, कर ले प्यार।
जो अपनावे अपना जान,
उसे करूँ मैं अपना दान।
इतना सबका आना-जाना,
किसको किसको है पहचाना ?
अपनावे जो भाई मान,
मुहपर जिसके हो मुसकान,

मनमें भी हो मीठी तान,
सदा रहेगी उसकी शान।
कोई भी हो, हो इनसान,
उसे करूँ मैं अपना दान।

दूरसे अपर्णाका प्रवेश

जयसिंह——कौन है वह, अपर्णा इतनी दूर क्यों खड़ी है ? सुन रही है, अवाक् होकर, जयसिंह गा रहा है गीत! सब झूठा है, सब प्रवचना है, इसीसे हँसता हूं, इसीसे गा रहा हूं गीत। वो देखो, इसीसे रास्तेसे जा रहे हैं आदमी निश्चिन्त होकर, इसीसे छोटी-छोटी बातोंको लेकर इतना हँसी-मजाक है, इतना कुतूहल है, इसीसे इतने जतनसे साज-सिंगार करके इतनी बन-ठनके जा रही हैं तरुणियाँ। 'सत्य' अगर होता, तो क्यों होता ऐसा ? सहजमें आनन्द इतना बहता क्या यहाँ ? तब तो वेदनासे विदीर्ण वसुन्धरापर विश्वव्यापी व्याकुल क्रन्दन थमकर मूक बना रहता अनन्तकाल तक। वशी अगर सचमुच ही रोती वेदनासे, तो वह फट जाती, उसका संगीत हो जाता नीरव। झूठी होनेसे ही इतनी हँसी है उसमें! श्मशानकी गोदमें बैठकर खेल, वेदनाके पास सोकर गान और हिंसा-व्याघ्रिनीके तेज नाखूनोंके नीचे चल रहा है, रोजमर्राका काम। 'सत्य' होता, तो क्या ऐसा हो सकता था ? हा अपर्णा, हम-तुम कुछ भी सत्य नहीं, यही जानके सुखी होओ, खिन्न विस्मयसे स्निग्ध दृष्टि उठाये क्यों देख रही हो मेरी ओर ? आओ सखी, दोनों मिलकर चिरदिन चलते ही चलें हम संसारके ऊपरसे, शून्य आकाशमें दो हलके खण्ड-मेघोंकी तरह।

रघुपतिका प्रवेश

रघुपति——जयसिंह!

जयसिंह——तुम्हें नहीं पहचानता मैं। आज मैं चला जा रहा हूँ,

अपने अदृष्ट-स्रोतमे बहता-हुआ, अपने पथपर, पथके सहस्र पथिक जैसे चले जा रहे हैं! तुम क्या कह रहे हो मुझसे खडे होनेके लिए? नहीं नहीं, जाओ, तुम चले जाओ, मैं भी चला जाऊँ।

रघुपति—जयसिंह!

जयसिंह—सामने तो पड़ा है पथ सरल सीधा, चला जाऊँगा हाथमें भिक्षापात्र लिये, साथ लेकर अपनी भिखारिनी सखीको। – किसने कहा कि इस ससारका राजपथ दुरूह है, जटिल है! कैसे भी चलूँ, दिन समाप्त होते ही पहुँच जाऊँगा जीवनके अन्तिम पलकमे। आचार-विचार तर्क वितर्कका जाल न-जाने कहाँ बिला जायगा! छोटा-सा यह क्लान्त परिश्रान्त नर-जन्म, इसे सौंप दूँगा धरणीकी गोदमें, दो-चार दिनकी यह समष्टि अपनी, दो-चार दिनकी भूल-भ्रान्ति भय सुख-दुःख हृदयकी क्षीण आशा, दुर्बलता-वश भ्रष्ट भग्न यह जीवन-भार, सब अनन्तकालके हाथ सौंपकर गभीर विश्राम! यही तो ससार है! क्या काम शास्त्रके विधानसे, क्या काम गुरुसे? (कुछ देर स्तब्ध रहनेके बाद)—प्रभु, पिता, गुरुदेव, क्या कह रहा था मैं! स्वप्नमे था अब तक। यही है वह मन्दिर, वह खडा है वृद्ध महावट, अटल कठिन सुदृढ़, निष्ठुर सत्यकी तरह! क्या आदेश है, देव? भूला नहीं मैं अपना कर्तव्य है। याद है, क्या करना होगा। यह देखो, (छुरा दिखाकर) तुम्हारे आदेशकी यादको भीतर बाहर दोनों जगह पैना रहा हू। और भी कुछ आदेश है प्रभु?

रघुपति—दूर कर दो उस बालिकाको मन्दिरसे।—मायाविनी, जानता हू मैं तेरी माया।—दूर कर दो, दूर कर दो इसे।

जयसिंह—दूर कर दूँ? दरिद्र और मन्दिरकी आश्रित है जो मेरी ही तरह, मेरे ही समान, हाय, जो है सगीहीन, अकण्टक पुष्पके समान निर्दोष निष्पाप शुभ्र सुन्दर सरल जो है, सुकोमल वेदनासे जो है कातर, दूर कर देना होगा उसे? कर दूँगा, करूंगा पालन आदेश तुम्हारा, गुरुदेव! चली जा

अपर्णा। दया-ममता स्नेह-प्रेम सब झूठा है। मर जा, अपर्णा! ससारके बाहर और कहीं भी कुछ न हो अगर, तो न सही, दयामय मृत्यु तो है ही। चली जा अपर्णा।

अपर्णा—तुम चले आओ जयसिंह, इस मन्दिरको छोड़कर चले आओ, चलो हम दोनों चले जायँ यहाँसे।

जयसिह—दोनों जने चले जायें! यह तो स्वप्न नहीं। एक स्वप्न समझा था, स्वप्न है यह ससार। इससे हँसा था सुखसे, गीत गाया था आनन्दसे। किन्तु सत्य है यह जो! मत कहो कोई सुखकी बात, न दिखाओ स्वाधीनताका प्रलोभन, वन्दी हूं मैं सत्य-कारागारका!

रघुपति—'जयसिह! समय नहीं यह मीठे आलापका। दूर कर दो इस बालिकाको।

जयसिह—चली जा अपर्णा, चली जा!

अपर्णा—क्यों जाऊँ?

जयसिंह—यही है नारी-अभिमान तेरा?

अपर्णा—अभिमान कुछ भी नहीं अब। जयसिंह, तुम्हारी वेदना मेरी सम्पूर्ण व्यथासे समस्त गर्वसे ज्यादा है। मुझे कुछ भी अभिमान नहीं।

जयसिह—तो मैं जाता हूं। तेरा मुह नहीं देखूँगा, जब तक रहेगी यहाँ। चली जा अपर्णा!

अपर्णा—निष्ठुर ब्राह्मण, धिक्, धिक् तुम्हारे ब्राह्मणत्वपर। क्षुद्र नारी हूं मैं, अभिशाप दिये जाती हूँ तुम्हे, जयसिह तुम्हारे बन्धनमें हरगिज बँधा नहीं रह सकता। तुम्हारा बन्धन कभी नहीं बाँध सकता जयसिंहको।

[प्रस्थान

रघुपति—वत्स, मुँह उठाओ, बात करो एक बार। प्राणप्रिय प्राणाधिक, मेरे हृदयमें क्या अगाध समुद्र-समान स्नेह नहीं है? और भी चाहता है? मैं आजन्मका बन्धु हू तेरा, क्षण-भरका मायापाश छूट गया तो उसके लिए इतना क्लेश?

बीमार पड़ा-पड़ा जी तो रहा था! पर ज्यों ही बलि बन्द हुई नहीं कि चल बसा!

अक्रूर—वाह रे वाह! उसे मरे तो आज तीन महीने गुजर चुके।

हारू—अरे, तीन महीने ही सही, पर मरा तो इसी साल है।

हीरामणि—अजी, उसकी जाने दो, मेरे जेठौतको लो न, वह चला जायगा यह कौन जानता था! तीन दिनके बुखारमे! जैसे ही बैदकी गोली दी नहीं कि आँखें ऊपरको चढ गई!

गणेश—उस दिन माथुरगञ्जमे आग लग गई, सो एक भी घर नही बचा, सब भसम!

चिन्तामणि—अजी, इतना सब क्यों कहते हो, देखो न, इस साल धान इतना मद्दा हो गया कि कोई पूछता ही नहीं। इस साल किसानके भाग्यमे क्या है सो कौन जाने!

हारु—चुप चुप, देख, राजा आ रहे हैं! चलो यहाँसे भाग चलें।

[सबका प्रस्थान

चाँदपाल और गोविन्दमाणिक्यका प्रवेश

चाँदपाल—महाराज, सावधानीसे रहो। चारो ओर आँख-कान बिछाये रहता हू मैं, राजाका इष्ट-अनिष्ट कुछ भी छिपा नहीं रहता मुझसे। महाराज, तुम्हारी हत्याके लिए गुप्त परामर्श मैंने अपने कानोंसे सुना है।

गोविन्दमाणिक्य—मेरी हत्या! कौन करेगा?

चाँदपाल—कहनेमे सकोच होता है! डर लगता है, कहीं वह निष्ठुर सवाद सचमुचके छुरेसे भी ज्यादा चोट न पहुचाये!

गोविन्दमाणिक्य—बिना किसी सकोचके कहते जाओ मत्री! राजाका हृदय सदा तैयार रहता है चोट सहनेके लिए। बताओ, किसने किया है ऐसा परामर्श?

चाँदपाल—युवराज नक्षत्र रायने ।

गोविन्दमाणिक्य—नक्षत्रने ?

चाँदपाल—अपने कानोंसे सुना है, महाराज, रघुपति और युवराजमे मन्दिरमे बैठकर सब बातें तय हुई हैं।

गोविन्दमाणिक्य—दो ही क्षणमे तय हो गया आजन्मका बन्धन तोड़ना ! हाय री विधि !

चाँदपाल—जो देवीके आगे ले जाकर चढायेगा तुम्हारा खून—

गोविन्दमाणिक्य—देवीके आगे ! तो फिर इसमे नक्षत्रका कोई दोष नहीं । समझ गया मैं, देवताके नामपर मनुष्यत्व खो देता है मनुष्य ! कोई डर नहीं, तुम जाओ अपने कामसे । सावधान रहूंगा मैं ।

[चाँदपालका प्रस्थान

—खून नहीं, फूल लाया हू, महादेवी ! भक्ति, केवल भक्ति है मेरे हृदयमे । हिंसा नहीं, विभीषिका नहीं, केवल भक्ति । ससारमे दुर्बल-जन बड़े असहाय हैं मा ! बाहुबल बड़ा ही निष्ठुर है, स्वार्थ बडा क्रूर है, लोभ बडा भयानक है, मा ! अज्ञान बिलकुल ही अन्धा है, गर्व दम्भ बिना किसी दुविधाके छोटोंको पैरों-तले कुचलते-हुए चले जाते हैं यहाँ । यहाँ स्नेह-प्रेम अत्यन्त क्षीण वृन्तपर लटकते हैं, स्वार्थका स्पर्श लगते ही वे क्षणमें टूटकर गिर जाते हैं धूलमे । तुम भी यदि, जननी, खड्ग उठाओगी, निकालोगी रसना, तो सब अन्धकारमय हो जायगा । भाई आज भाई नहीं, मा ! पतिसे वाम है सती आज ! बन्धु आज शत्रु हो गया, खूनसे भर गया मनुष्यका वासगृह, हिंसा बन गई आज पुण्य, दयाको हो गया निर्वासन ! अब नहीं, अब नहीं, छोडो यह छद्मवेश । अब भी क्या नहीं हुआ समय ? अब भी क्या बना ही रहेगा प्रलय-रूप तुम्हारा ? यह जो चारों तरफसे खड्ग उठ रहा है मेरे मस्तकको लक्ष्य करके, माता, यह क्या तेरी ही चार भुजाओंसे ? तो ऐसा ही हो ! वही हो जो तू चाहती है । शायद मेरे रक्तपातसे ही

हिंसानल बुझेगा! राज-हत्या! भाईसे भाईकी हत्या! समस्त प्रजाके हृदयको पहुचेगी चोट, जगत्के समस्त भाइयोंके प्राण उठेंगे रो! मेरे रक्तसे हिंसाका मिट जायगा मातृवेश, प्रकट होगा राक्षसी आकार। यही यदि दयाका विधान हो तेरा, तो हो, यही हो।

जयसिंहका प्रवेश

जयसिंह—बोल, चण्डी, सचमुच ही क्या राज-रक्त चाहिए तुझे? बोल जल्दी, अभी बोल, बोल अपने मुँहसे, बोल मानवकी भाषामें, बोल जल्दी, सचमुच ही क्या चाहिए तुझे राज-रक्त?

नेपथ्यसे—चाहिए!

जयसिह—तो, महाराज, नाम लो इष्ट-देवताका। काल तुम्हारे सामने खड़ा है!

गोविन्दमाणिक्य—क्या हुआ है तुम्हे जयसिह?

जयसिह—सुना नहीं अपने कानोंसे? देवीने स्वय कहा, 'चाहिए!'

गोविन्दमाणिक्य—देवीने नही कहा, जयसिह, कहा है रघुपतिने पीछे छिपे-हुए। परिचित कण्ठस्वर है, तुमने नहीं पहचाना?

जयसिह—रघुपतिने कहा है? पीछे छिपे-हुए? नहीं नहीं, अब नहीं, बार-बार सशयमेंसे सशयमें अब नहीं कूदा जाता मुझसे। ज्यो ही किनारेपर आता हू, न-जाने कौन मुझे ढकेल देता है अथाह पानीमे! जरूर अविश्वास-दैत्य है वह! अब नहीं। गुरु हो चाहे देवी हो, एक ही बात है। (छुरा निकाल लेता है और फिर फेंक देता है)—फूल ले मा! ले ले मा! ले ले फूल, मा! पाँवों पड़ता हूं,—मात्र इन फूलोसे ही तृप्त हो जा। अब रक्त नहीं, मा, अब रक्त नही। ये भी रक्तके समान ही हैं लाल रगीग दो जवा-फूल। जगद्धात्री पृथ्वी-माकी छाती फाडकर खिल उठे हैं, सन्तानके रक्तपातसे व्यथित धराकी स्नेह-वेदनाकी तरह। मैं नहीं

डरता तेरे क्रोधसे! नहीं दूंगा रक्त मैं! देख्, तू क्या करती है! दिखाती है सुर्ख आँखें मुझे? उठा अपना खड्ग! ले आ अपने मसानी दलको। मैं नहीं डरता! नहीं डरता मैं!

[गोविन्दमाणिक्यका प्रस्थान

—यह क्या हुआ, हाय! देवी, गुरु, जो-कुछ था मेरा, सबको एक क्षणमें तिलाजलि दे दी मैंने, विश्वमें कुछ भी नहीं रहा मेरा!

रघुपतिका प्रवेश

रघुपति—सब-कुछ ले लिया मैंने। सब बरबाद कर डाला तूने! क्या किया,—अरे ओ अकृतज्ञ, यह क्या किया तूने!

जयसिंह—दण्ड दो, प्रभु!

रघुपति—सब तोड़-ताड़कर नष्ट कर दिया! ब्रह्म-शापको लौटा लाया बीच-रास्तेसे! गुरु-वाक्यका लघन किया। व्यर्थ कर दिया देवीका आदेश! अपनी बुद्धिको समझ लिया सबसे बड़ा! आजन्मका स्नेहका ऋण मेरा इस तरह चुकाया तूने!

जयसिंह—दण्ड दो, पिता!

रघुपति—क्या दण्ड दूं, कौन-सा दण्ड दूं तुझे?

जयसिंह—प्राणदण्ड।

रघुपति—नहीं। उससे भी बड़ा दण्ड चाहिए। स्पर्श कर देवीके चरण।

जयसिंह—छूता हूं देवीके चरण।

रघुपति—बोल, 'मैं ला दूंगा राज-रक्त, श्रवणकी शेष-रात्रिमे देवीके चरणोंमें।'

जयसिंह—मैं ला दूंगा राज-रक्त, श्रावणकी शेष रात्रिमें देवीके चरणोंमे।

रघुपति—जाओ अब।

तीसरा अंक

पहला दृश्य

मन्दिरमें जनता, रघुपति और जयसिंह

रघुपति—तुमलोग सब यहाँ किसलिए आये हो ?

जनता—देवीके दर्शन करने, देवीके दर्शन करने !

रघुपति—अच्छा ! देवीके दर्शन करने ! अभी तक तुमलोगोंकी आँखें मौजूद हैं,—बाप-दादोंका भाग्य समझो ! देवी हैं कहाँ ? देवी इस राज्यको छोड़के चली गईं। तुमलोग अपनी देवीको रख कहाँ सके ? चली गईं देवी, चली गईं।

जनता—सत्यानास हो गया ! यह क्या कह रहे हैं महाराज ! हमसे क्या कसूर बन पड़ा ?

निस्तारिणी—मेरा बहनौत बीमार था इसलिए मैं इधर कई दिनोंसे पूजा चढ़ाने नहीं सकी महाराज !

गोवर्धन—मैंने तो बहुत दिनोंसे तय कर रखा था कि माको दो-दो बकरे चढ़ाऊँगा, इतनेमे राजाने बली ही बन्द कर दी, इसमें मेरा क्या दोष ?

हारू—अरे उस गन्धमादनको देख लो न,—मासे मन्नत करके बेईमानी मनमें लाया, सो आज तक पड़ा ही है खाटपर। महाजन है तो हमलोगोका है, मासे चालबाजी थोड़े ही चल सकती है !

अक्रूर—चुप भी रहो तुमलोग ! फजूलमें हल्ला मचा रक्खा है। हाँ, महाराज, यह तो बतलाइये, मा क्यों चली गईं, हमसे क्या कसूर बन पड़ा ?

रघुपति—माके लिए एक बूँद खून तक नही दे सके तुमलोग,—यही तो भक्ति है तुमलोगोंकी ?

जनतामेंसे बहुतसे—राजाका हुक्म था, हम क्या करते ?

रघुपति—कौन है राजा ? माका सिंहासन क्या राजाके सिंहासनके नीचे है ! तो तुमलोग इस मातृहीन राज्यमें राजाको लेकर ही रहो, देखूगा मैं, राजा कैसे तुमलोगोंकी रक्षा करता है ।

[जनता डर जाती है और आपसमें कानाफूसी करती है]

अक्रूर—चुप रहो, चुप रहो सब ।—महाराज, सन्तानसे अगर कोई कसूर बन पड़ा हो, तो मा उसे दण्ड दे,—लेकिन एकदम छोड़के चले जाना, यह तो माके जैसा काम नहीं हुआ । अब हमें यह बताओ, महाराज, क्या करनेसे माको लौटाया जा सकता है ?

रघुपति—तुमलोगोंका राजा जब राज्य छोड़कर चला जायगा, मा तभी इस राज्यमे पदार्पण कर सकती हैं ।

[निस्तब्ध होकर सब एक दूसरेका मुँह ताकते हैं]

रघुपति—तो तुमलोग देखना चाहते हो ? यहाँ आओ । बहुत दूरसे बड़ी आशासे तुमलोग माके दर्शनके लिए आये हो,—आओ, दिखाऊँ तुम्हे माका रूप !

[मन्दिरका द्वार खुल जाता है, और प्रतिमाकी पीठ दिखाई देती है]

सबके सब—यह क्या ! माका मुँह किधर है ?

अक्रूर—अरे अभागो, मा हमसे विमुख हो गई हैं ।

सबके सब—ओ मा, मा, इधर घूम, मा ! हमारी तरफ घूमके खड़ी हो मा ! घूमके खड़ी हो । बच्चोंका कसूर माफ कर दे, मा ! कहाँ है मा, कहाँ है तू ? हमलोग तुझे वापस लायेंगे ही, हरगिज नहीं छोड़नेके । नहीं चाहिए हमे राजा । जाने दो राजाको, मरने दो ।

जयसिंह (रघुपतिके पास आकर)—प्रभु, मैं क्या एक शब्द भी नहीं कह सकता ?

रघुपति—नहीं ।

जयसिंह—सन्देहका क्या कोई भी कारण नहीं ?

रघुपति—नहीं।

जयसिंह—जो भी कुछ हो रहा है, सबपर विश्वास करना होगा ?

रघुपति—हाँ।

अपर्णाका प्रवेश

अपर्णा (जयसिंहके बगलमे आकर)—जयसिंह! आओ जयसिंह, जल्दी चले आओ इस मन्दिरको छोड़कर।

जयसिंह—हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा है मेरा!

[रघुपति, अपर्णा और जयसिंहका प्रस्थान

राजाका प्रवेश

प्रजागण—रक्षा करो, महाराज, हमारी रक्षा करो। माको लौटाओ!

राजा—सुनो मेरी वात, ध्यानसे सुनो सब! माको मैं वापस बुलाकर ही दम लूंगा।

प्रजागण—जय हो महाराजकी, जय हो!

राजा—एक वात पूछता हूं मैं तुमलोगोसे, तुमलोगोंने क्या माके पेटसे जन्म नहीं लिया ? माताओ, तुमलोगोने तो अनुभव किया है अपने कोमल हृदयमे मातृस्नेह-सुधाका! बताओ तो, मा क्या नहीं है ? ससारमें सबसे बड़ी, सबसे पुरानी, सबसे पवित्र चीज है माका प्यार। सृष्टिके प्रथम क्षणमें अकेला एक मातृस्नेह बैठा जाग रहा था, तरुण विश्वको गोदमें लिये, आँखें झुकाये। आज भी वह पुराना मातृस्नेह बैठा है धीरजकी प्रतिमा बनकर। उसने कितने उपद्रव सहे हैं, कितना शोक सहा है, कितनी वेदना सही है, कितना अनादर सहा है, कोई ठीक है! आँखोंके सामने उसने देखा है भाई-भाईमे कितना रक्तपात होते, देखी है कितनी निष्ठुरता, कितना अविश्वास! वाक्यहीन वेदना छातीमें लिये-हुए फिर भी वह जननी ज्योंकी त्यों बैठी है जहाँकी तहाँ, कमजोरोंके लिए गोद बिछाये, बिलकुल ही जो असहाय हैं उनके

लिए सम्पूर्ण हृदय खोले। आज ऐसा क्या अपराध बन गया हमलोगोंसे जिससे वह असीम स्नेह चला गया संसारको चिरमातृहीन अनाथ बनाकर! प्रजागण, माताओ, खुलासा बताओ, ऐसा क्या अपराध हो गया हमसे?

कोई-कोई—माकी बलि जो बन्द कर दी! माकी पूजा जो बन्द हो गई!

राजा—बन्द कर दी है बलि, इसी अभिमानसे विमुख हो गई है माता! महामारी फैल गई, अकाल पड गया, आग लगने लगी, रक्तपात शुरू हो गया! मा हमारी ऐसी है! क्षण-क्षणमे क्षीण शिशुको दूध पिलाकर जिलाती रहती है जो माता, सो क्या उसका रक्त पान करनेके लोभसे? माके ऐसे अपमानको हृदयमे स्थान देते-हुए क्या आजन्मके मातृस्नेहकी स्मृतिपर जरा भी चोट नहीं आई तुम्हारे? याद नहीं आया माका करुण मुख?—'खून चाहिए' 'खून चाहिए' कहके गरज रही हैं जननी! बेजबान बेबस कमजोर जीव प्राणोंके डरसे थर-थर काँप रहे हैं, और दयाहीन समर्थ मनुष्य रक्तकी मत्ततामे रहे हैं नाच! क्या यही हमारी माका परिवार है? हे माके पुत्रो, सोचो, विवेकसे विचारो जरा, यही क्या माकी स्नेह-छबि है?

प्रजागण—मूरख हैं हम, कुछ समझ नहीं सकते।

राजा—समझ नहीं सकते! दो दिन हुए ससारमें आये जिस बच्चेको, कुछ भी नहीं जानता जो, वह भी अपनी माको समझता है। वह भी समझता है, डर लगे तो उसके लिए माकी गोद है निर्भय, भूख लगे तो दूध है माके स्तनोंमें। कोई तकलीफ हो तो वह रोता है माके मुँहकी ओर देखकर। फिर, तुमलोग ऐसे क्या नासमझ हो गये, ऐसे क्या भूलभुलैयामें पड गये कि माको भूल गये? इतना भी नहीं समझ सकते कि मा दयामयी हैं? इतना भी नहीं समझ पाते कि जीव-जननीकी पूजा जीवोंके खूनसे नहीं होती? उनकी पूजा होती है प्रेमसे! इतना भी नहीं समझते कि जहाँ डर है वहाँ मा नहीं, जहाँ हिंसा है वहाँ मा नहीं, जहाँ रक्त है वहाँ मा नहीं,—वहाँ सिर्फ माके आँसू हैं। मेरे प्यारे भाइयो, स्नेहमयी मा-बहन-बेटियो,

कैसे दिखाऊँ मैं तुम्हे, कैसी वेदना देखी है मैंने माके मुँहपर ! कैसे समझाऊँ तुम्हे कि कैसी कातर दया थी उन आँखोमे ! कैसे अभिमान-तिरस्कारपूर्ण आँसू थे उन आँखोंमे ! दिखा सकता अगर, उसी क्षण पहचान जाते अपनी माको तुमलोग। स्वयं दया आई जब दीन वेशमे मन्दिरके द्वारपर, अपने आँसुओंसे माके सिंहासनसे कलकका दाग मिटानेके लिए, तब माता चली जायेंगी रूठकर हमारे अपराधपर ! यही सुविचार किया तुमलोगोंने माके प्रति ?

अपर्णाका प्रवेश

प्रजागण—देखो, देखो महाराज, खुद देखो भीतर जाकर, माने मुँह फेर लिया है आज सन्तानोंसे।

अपर्णा (मन्दिरके भीतर जाती हुई)—मुँह फेर लिया है माने ? आ तो मा, देख, आ तो सबके सामने एक बार। (प्रतिमाको फेरकर)—यह देखो, मा देख रही है सन्तानका मुँह !

सबके सब—माने देखा हमारी ओर ! मा ! मा ! जय हो, जय हो, माकी जय हो ! मा, तेरी जय हो !

सब मिलके गाते हैं

जय जय, मा, तेरी हो जय !
दूर हुआ अब सबका भय।
माने छोडा अपना रोष
माफ किया हम सबका दोष,
मातृ-हृदय है करुणा-कोष,
हुआ आज सबको सन्तोष।
जय जय, मा, तेरी हो जय !
कर दे हम सबको निर्भय।

जयसिंह और रघुपतिका प्रवेश

जयसिंह—सच बताओ प्रभु, क्या यह तुम्हारा ही काम था ?

रघुपति—सच नहीं तो क्या झूठ कहूँगा ? मुझे किसीका डर पड़ा है ? मेरा ही है यह कार्य। प्रतिमाका मुँह फेर दिया था मैंने। क्या कहना चाहते हो, कहो ! आज तुम गुरुके भी गुरु हो गये, तिरस्कार करने आये हो मेरा ? क्या उपदेश देना चाहते हो तुम मुझे, दो !

जयसिंह—कुछ नहीं कहना मुझे।

रघुपति—कुछ नहीं ? कोई भी प्रश्न नहीं तुम्हारा मुझसे ? मनमें सन्देह उत्पन्न होनेपर उसके समाधानके लिए गुरुके उपदेशकी जरूरत नहीं तुम्हें ? गुरु-शिष्यके मनमें इतना बड़ा विच्छेद हो गया ? रे मूढ, तो सुन ! सचमुच ही विमुख हो गई है देवी,—पर इससे प्रतिमाका मुँह नहीं फिर जाता। मन्दिरमें जो रक्तपात होता है, उसे देवी ही पान करती हैं, प्रतिमाके मुँहमें नहीं जाता वह। देवताका असन्तोष प्रतिमाके मुँहसे प्रकट नहीं होता। किन्तु मूर्खोंको कैसे समझाओगे ? उनकी आँखें ऐसी चीज देखना चाहती हैं जो दीख नहीं सकती। इसीसे, मिथ्यासे सत्य समझना पड़ता है उन्हें। मूर्ख, सत्य हमारे-तुम्हारे हाथ नहीं। 'सत्यकी प्रतिमा' सत्य नहीं, वाक्य सत्य नहीं, लिपि सत्य नहीं, मूर्ति सत्य नहीं, विचार सत्य नहीं। सत्य कहाँ है, कोई नहीं जानता, कोई नहीं पाता जिसे, वही सत्य कोटि मिथ्याके रूपमें फट पड़ा है चारों तरफ। सत्यने इसीसे नाम पाया है महामाया, जिसका अर्थ है महामिथ्या ! सत्य-महाराज बैठा रहता है राज-अन्त पुरमें, सैकड़ों 'मिथ्या' प्रतिनिधि हैं उसके, जो चारों तरफ दौड़-धूप करते रहते हैं। सोचा करो तुम बैठे-बैठे, इसी तरह माथेपर हाथ रखकर। मैं चला, मुझे बहुत काम है।

जयसिंह—जो तरंग किनारे लगा देती है वही खींचे लिये जा रही है अथाह पानीमें ! सत्य नहीं है, सत्य नहीं है, नहीं है सत्य ! सब झूठा है,

सब झूठ है, झूठ है सब ! देवी नहीं है प्रतिमाके अन्दर, तो कहाँ है वह ? कहीं भी नहीं वह, कहीं भी नहीं, देवी नहीं है। धन्य धन्य धन्य है मिथ्या तुमको !

दूसरा दृश्य

राज-प्रासादमें गोविन्दमाणिक्य और चाँदपाल

चाँदपाल—प्रजागण कर रहे हैं कुमन्त्रणा। मुगल-सेनापति आ रहा है आसामकी तरफ चढाई करने। फौज पास आ पहुँची है, दो-तीन दिनका रास्ता और रह गया है। प्रजाकी तरफसे प्रस्ताव जा रहा है, महाराजको सिंहासनसे हटानेके लिए।

गोविन्दमाणिक्य—मुझे हटाना चाहते हैं ? मुझपर इतना असन्तोष क्यों ?

चाँदपाल—महाराज, सेवकका विनय रखिये, – निष्ठुर प्रजाको अगर पशु-रक्त इतना ही अच्छा लगता है तो दो उन्हे पशु-बध करने ! उनकी राक्षसी प्रवृत्ति पशुओपर ही चरितार्थ होने दो। हमेशा मुझे डर लगा रहता है, कब क्या हो जाय !

गोविन्दमाणिक्य—मैं जानता हूं, चाँदपाल, कि डर है। राज-कार्यका भी भार है तुमपर। समुद्र भीषण है; फिर भी नाव किनारे लगानी ही पड़ेगी। प्रजाका दूत क्या चला गया मुगलोंके पास ?

चाँदपाल—हाँ, अब तक पहुँच गया होगा।

गोविन्दमाणिक्य—चाँदपाल, तो तुम जाओ जल्दी, इसी वक्त,—मुगलोंके शिविरके आस-पास रहना, और जब जैसी खबर मिले, मुझे समाचार देते रहना।

चाँदपाल—महाराज, खूब सावधानीसे रहना यहाँ ! भीतर-बाहर सर्वत्र शत्रु हैं महाराजके ! सर्वदा सावधान रहना राजन् ! मैं जाता हू ।

[प्रस्थान

गुणवतीका प्रवेश

गोविन्दमाणिक्य—प्रिये, बडा शुष्क है यह ससार ! बड़ा शून्य है ! भीतर-बाहर सर्वत्र शत्रु हैं । आओ प्रिये, क्षण-भर मेरे पास आकर बैठो अपने चेहरपर हँसी लिये, प्रसन्नवदने ! अपने प्रेम-भरे नेत्रोंसे देखो एक बार मेरी तरफ । प्रेमहीन अन्धकार, षड्यन्त्र, सकट, विद्वेष सबके ऊपर हो तुम्हारा सुधामय आविर्भाव, घोर निशीथके शिखरपर निर्निमेष चन्द्रकी तरह ! प्रियतमे, निरुत्तर क्यों हो ? मेरे अपराधके विचारका क्या यही समय है ? तृषार्त हृदय मेरा इस मरुभूमिमें मुमूर्षुकी तरह सुधापात्र हाथमे लिये आया है तुम्हारे पास, क्या उसे रीते-हाथ लौटा दोगी ? [गुणवतीका प्रस्थान

नक्षत्र रायका प्रवेश

नक्षत्र राय (स्वगत)—जहाँ भी जाता हूँ, सब कहते हैं, 'तुम राजा होगे !' 'राजा होगे ।' बड़े आश्चर्यकी बात है । अकेला बैठा होऊँ तो भी सुना करता हूँ 'तुम राजा होगे ।' कानोंमें मानो तोतोंने घोंसला बना लिया है, एक ही रट लगाये हुए हैं, 'राजा होगे !' अच्छी बात है, राजा होऊँगा , लेकिन राज-रक्त, सो क्या तुमलोग ला दोगे ?

गोविन्दमाणिक्य—नक्षत्र ! (नक्षत्र चौंक पड़ता है)—नक्षत्र ! मुझे मारोगे तुम ? बताओ, सच बताओ, मारोगे मुझे ? हत्या करोगे मेरी ? क्या यही बात ध्वनित हो रही है तुम्हारे कानोमे दिन-रात ? क्या इसी संकल्पको मनमे लिये-हुए तुमने हँस-हँसके बातें की हैं मुझसे ? बार-बार पाँव छूकर प्रणाम किया है और आशीर्वाद लिया है, मध्याह्नमे एक अन्नमेसे भाग करके भोजन किया है तुमने मेरे साथ, तब क्या यही सकल्प था

तुम्हारे मनमें ? मेरी छातीमें छुरा भोंकोगे ? अरे ओ भाई मेरे, इसी छातीसे लगाया था मैंने तुझे, पहले-पहल जब तेरे पाँव पड़े थे इस कठिन मर्त्यभूमिपर ! इसी छातीसे लगाया था तब तुझे जिस दिन हम दोनोंकी जननी तेरे सिरपर स्नेहका हाथ रखकर चली गई थी धराधामको शून्य करके ! आज, वही तू, उसी छातीमें भोंकेगा छुरी ! एक ही रक्तधारा बह रही है हम दोनोंकी देहमें, जो धारा पिता-पितामहोंसे बहती चली आई है हमेशासे भाइयोंकी शिराओंमें । उस शिराको छिन्न करके उसका तू रक्त बहायेगा धरतीपर ! यह ले, बन्द किये देता हूँ द्वार, यह ले मेरी तलवार, ले मार, खोले देता हूँ छाती अपनी, भोंक दे ! पूरी हो तेरी मनोकामना ।

नक्षत्र राय—क्षमा करो । क्षमा करो भाई, क्षमा करो ।

गोविन्दमाणिक्य—आओ वत्स, लौट आओ, अपनी उसी छातीसे आ लगो । क्षमा माँग रहे हो ? जब यह संवाद सुना था तभी मैंने क्षमा कर दिया है तुम्हें । क्षमा न करनेमें मैं जो असमर्थ हूं ।

नक्षत्र राय—रघुपति दिया करता है मुझे बुरी सलाह । मुझे बचाओ उसके हाथसे ।

गोविन्दमाणिक्य—कोई डर नहीं, भाई, भाई तुम्हारी रक्षा करेगा, तुम निश्चिन्त रहो ।

तीसरा दृश्य

राज-अन्तःपुरमें गुणवती

गुणवती—इतना किया, फिर भी कुछ नहीं ! आशा की थी मन-ही-मन कि कठिन बनी रहूँ कुछ दिन तो आप ही पकड़ाई देने आयेंगे प्रेमकी प्याससे ! इतना अहंकार था मनमें । मुँह फेरे रही, बात नहीं की, आँसू नहीं निकाले, सिर्फ सूखा क्रोध, बार-बार अनादर अवहेलना, सब-कुछ किया, इतने दिन बीत गये, फिर भी कुछ नहीं ! सुना है नारीका रोष पुरुषोंके लिए

मात्र एक शोभा है आभामय मणिकी दीप्तिके समान। धिक्, धिक् है उस शोभाको! वह वज्रके समान होता कहीं, तो टूट पड़ता प्रासादपर, छूट जाती निद्रा राजाकी, चूर्ण हो जाता राजाका अहंकार, पूर्ण होती रानीकी महिमा। मै रानी हूं! क्यों पैदा हुई यह झूठी कल्पना, झूठा विश्वास! हृदयकी अधीश्वरी हूं मै तुम्हारी, क्यों सुनाया था प्रतिदिन मन्त्र यह मेरे कानोंको? यह क्यों नहीं कहा मुझसे कि मै क्रीतदासी हूं, राजाकी, किंकरी हूं, रानी नहीं, तो फिर सहसा आज ऐसा आघात, ऐसा पतन तो नहीं सहना पड़ता।

ध्रुवका प्रवेश

—कहाँ जा रहा है तू?

ध्रुव—राजाने बुलाया है मुझे। [प्रस्थान

गुणवती—राजाका हृदय-रत्न यही है वह बालक। ओरे बच्चे, तूने ही चुरा लिया है वह आसन जो मेरी सन्तानके लिए सुरक्षित था। मेरे बच्चोंके आनेके पहले ही तूने उनके पितृस्नेहपर कब्जा कर लिया है। राज-हृदयके सुधापात्रसे तूने ही ले ली प्रथम अंजलि! राजपुत्र आकर तेरा ही प्रसाद पायेंगे क्या, ओरे राजद्रोही! मा, महामया मा, यह कैसा न्याय तुम्हारा! इतनी सृष्टि, इतना खेल है तेरा,—खेल-ही-खेलमें दे दे मुझे एक नन्हा-सा लाल! हे मा जगज्जननी, सिर्फ नन्हा-सा एक बच्चा, जिससे मेरी गोद भर जाय। तुझे जो अच्छा लगता हो, वही दूगी मैं तेरे चरणोंमें।

नक्षत्र रायका प्रवेश

—नक्षत्र, कहाँ चले? वापस क्यों जा रहे हो? इतना डर किसका तुम्हें? मै नारी हूं, अस्त्रहीन, बलहीन, निरुपाय, असहाय,—मै क्या इतनी भीषण हूं जो इतना डरते हो मुझसे?

नक्षत्र राय—नहीं, नहीं, मुझे न बुलाओ।

गुणवती—क्यों, क्या हुआ ?

नक्षत्र राय—मै राजा नहीं होऊंगा ।

गुणवती—न होगे तो न सही । इतनी उछल-कूद क्यों ?

नक्षत्र राय—चिरकाल जीते रहें राजा, भगवान करें मै युवराज रहकर ही मरूं ।

गुणवती—सो ही मरो । जल्दी मरो । पूरा हो मनोरथ । मै क्या तुम्हारे पाँवों पड़कर प्रार्थना कर रही हूँ कि तुम जिन्दा रहो ?

नक्षत्र राय—तो क्या कहना चाहती हो, कहो !

गुणवती—जिस चोरने चुरा रखा है तुम्हारा मुकुट, उसे हटा दो। समझे कुछ ?

नक्षत्र राय—सब समझ गया, सिर्फ इतना-भर नहीं समझा कि कौन है वह चोर !

गुणवती—वही बालक ध्रुव है वह चोर । बढ रहा है राजाकी गोदमें, दिनपर दिन ऊँचा होता जा रहा है मुकुटकी तरफ ।

नक्षत्र राय—हूँ ! अब समझा ! मुकुट देखा तो है उसके सिरपर । मैंने उसे खेल समझा था ।

गुणवती—मुकुटसे खेल ! बड़ा काला खेल है वह । अभीसे मिटा दो उस खेलको, नहीं-तो किसी दिन तुम्हें ही बनना पड़ेगा खेलका खिलौना, समझे !

नक्षत्र राय—समझा ! यह तो अच्छा खेल नहीं ।

गुणवती—आज आधी रातको, गुप्तरूपसे ले जाकर उसे देवीके चरणोंमें चढ़ा दो मेरे नामसे । उसके रक्तसे शान्त हो जायगा देवीका क्रोधानल, स्थायी होगा सिंहासन इस राजवंशका , पितृगण गायेंगे कल्याण तुम्हारा । समझे कुछ ?

नक्षत्र राय—समझा ।

गुणवती—तो जाओ । जो कहा सो करो । याद रखना, मेरे नामसे चढाना देवीके चरणोंमे !

नक्षत्र—ऐसा ही होगा। मुकुटसे खेल ! यह कैसा सत्यानासी खेल ! समझ गया सब,—देवी सन्तुष्ट होंगी, राज्यकी रक्षा होगी, और, और पितृगण,—सब समझ गया मैं।

चौथा दृश्य

मन्दिरके सोपानपर जयसिंह

जयसिंह—देवी, हो तुम, हो ! रहो, रहो देवी, रहो तुम ! इस असीम रजनीके शेष प्रान्त तक कणामात्र होकर भी अगर कही हो तुम, तो वहींसे क्षीणतम स्वरमे जवाब दो, कह दो मुझसे, "वत्स, हूं मे।" – नही है, नहीं है, नहीं है, देवी नहीं है। नही है ? दया करो, देवी, रहो। अरी ओ मायामयी मिथ्या, दया कर, दया कर जयसिंहपर, सत्य हो उठ तू ! आशैशव भक्ति मेरी, आजन्मका प्रेम मेरा, तुझे प्राण नहीं दे सकता ? इतनी मिथ्या है तू ? अपना यह जीवन तूने किसे दे डाला जयसिंह ! तूने अपना सब-कुछ फेंक दिया इस सत्यशून्य दयाशून्य मातृशून्य सर्वशून्य रसातलमें !

अपर्णाका प्रवेश

—अपर्णा, फिर आ गई तू ? मन्दिरसे निकाल बाहर किया तुझे, फिर भी तू दिन-रात आस-पास चारों तरफ घूमती फिरती है, दारिद्रके मनमें सुखकी दुराशाके समान ? सत्य और मिथ्यामें प्रभेद सिर्फ इतना ही है। मिथ्याको रखता हू मन्दिरके भीतर बडे जतनसे, फिर भी वह रहते-हुए भी नही रहता, और सत्यको निकाल बाहर करता हू मन्दिरसे, अनादर अपमानके साथ, तो भी वह लौट-लौट आता है ! अपर्णा, अब मत जा तू, तुझे अब मैं नहीं निकालूगा। आ, यहाँ बैठें दोनों। बहुत रात हो गई है। कृष्णपक्षका चाँद उठ रहा है पेडकी ओटमेंसे। चराचर निद्रामें मग्न

है ; सिर्फ हम दोनों नहीं सोये। अपर्णा, विषादमयी अपर्णा, तुझे भी क्या धोखा दे गया है मायाका देवता ? देवताकी जरूरत क्या है हमें ? क्यो हम बुला लाते है उसे अपनी छोटी-मोटी सुखकी घर-गृहस्थीमे ? वे क्या हमारी व्यथाको समझते हैं ? पाषाणकी तरह केवल देखते रहते हैं ,– और हम, हम अपने भाईको प्रेमसे वंचित करके, उस प्रेमको चढाते हैं देवताके चरणोमें ! हमारा वह प्रेम क्या उनके कोई काम आता है ? इस सुन्दरी सुखमयी धरणीसे मुंह फेरकर हम देवताकी ओर देखा करते है, वह किधर देखता है ? उसके लिए क्षुद्र हो सकती है, तुच्छ हो सकती है, किन्तु हमारे लिए तो धरणी मा है। उसकी दृष्टिमें कीट-सम हों तो हुआ करें, किन्तु हमारे लिए तो भाई भाई ही है ! उपेक्षासे सबको अपने अन्धे रथके नीचे पीसता हुआ चला जाता है, फिर भी, वे दलित उपेक्षित हैं तो हमारे ही अपने। आओ अपर्णा, भयहीन देवता-हीन होकर हम सब और-भी पास आकर प्रेमसूत्रमें बँधके रहें। – खून चाहिए ? स्वर्गका ऐश्वर्य त्यागकर क्या इसीलिए आई है इस दरिद्र धरतीपर ? वहाँ मानव नही हैं, जीव नही हैं, खून नही है, ऐसा कुछ भी नही वहाँ जो व्यथासे फड़फड़ाये ! इसीसे स्वर्गसे हो गई है अरुचि तुझे ? राक्षसी, यहाँ आई है शिकार खेलने, जहाँ निर्भय विश्वास-सुखसे नीड बनाकर रह रहे हैं मानवके छोटे-छोटे परिवार ? अपर्णा, बाले, देवी नही है ! मै कहता हूँ, देवी नही है !

अपर्णा—जयसिंह, तो चले आओ, इस मन्दिरको छोड़कर, चले आओ मेरे साथ।

जयसिंह—चलूंगा, चलूंगा, इसे छोड़ चलूंगा। हाय री अपर्णा, जाना ही होगा मुझे। फिर भी, जिस राज्यमें आजन्म किया है वास, उसका राज-कर चुकाकर तब कहीं जाना होगा मेरा। जाने दो इन-सब बातोंको। देखो उधर, गोमतीकी शीर्ण जलरेखा ज्योत्स्नालोकसे पुलकित हो उठी है,– कल-ध्वनि उसकी बार-बार एक ही बात दुहरा रही है। आकाशमें क्षीण अर्धचन्द्र थककर पीला पड़ गया है, ज्यादा रात जगनेसे मानो उसकी आँखें मुँदी जा रही हैं नीदके भारसे। सुन्दर है जगत् ! हा, अपर्णा, ऐसी रातमें

देवी नहीं है ! जाने दो देवीको। अपर्णा, जानती है तू, सुख-भरी सुधा-भरी बात कोई ? बस, वही बात सुना, जिसके सुनते ही क्षणमे अतलमें मग्न होकर भूल जाऊं जीवनका ताप, और मरण कितना माधुर्यमय है उसका पहलेसे ही मिल जाय स्वाद। अपर्णा, आज ऐसी कोई बात सुना तू, अपने मधुकण्ठसे, अपने मधुमय नेत्रोंसे मेरे मुंहकी ओर देखती-हुई, इस जनहीन स्तब्ध निशीथ रजनीमें, इस विश्वजगतकी नींदमें, बोल री अपर्णा, जिसके सुननेसे ऐसा लगने लगे कि चारों ओर और-कुछ भी नहीं, केवल प्रेम-ही-प्रेम वह रहा है, पूर्णिमाकी सुप्त-रजनीमें रजनीगन्धाके सौरभ-सा !

अपर्णा—हाय, जयसिंह, कहते नहीं बनता कुछ, समझती-भर हूं, मनमें हैं कितनी बातें !

जयसिंह—तो और-भी पास आ, मनसे मनमें आने दे बातोंको। – यह क्या कर रहा हूं मै ! अपर्णा, अपर्णा, चली जा तू मन्दिर छोड़कर। जा, जा, गुरुका आदेश है !

अपर्णा—जयसिंह, निष्ठुर न होओ तुम। बार-बार न लौटाओ मुझे। कितना सहा है मैंने, अन्तर्यामी ही जानते हैं।

जयसिंह—तो, मै जाता हूं। यहाँ एक क्षण भी नहीं। (कुछ दूर जाकर वापस आ जाता है) अपर्णा, निष्ठुर हूं मै ? यही क्या रहेगा तेरे मनमें, 'जयसिंह निष्ठुर है, कठिन-कठोर है !' कभी भी क्या हँसकर नहीं की बात मैंने ? कभी भी क्या बुलाया नहीं अपने पास मैंने तुझे ? कभी भी क्या गिराये नहीं आँसू तेरे आँसू देखकर ? अपर्णा, वे बातें न आयेंगी याद कभी ? सिर्फ यही याद जागती रहेगी मनमें तेरे, 'जयसिंह निष्ठुर है, पाषाण है ?' जैसी पाषाण है मन्दिरकी मूर्ति वह, देवी कहता था जिसे ? हाय देवी, तू अगर देवी होती, तू अगर समझती मेरे इस अन्तर्दाहको !

अपर्णा—बुद्धिहीन व्यथित है यह क्षुद्र नारी-हृदय, क्षमा करो इसे। बस, अब चले आओ, यही समय है ; – जयसिंह, आओ, चलो, हम-तुम और-कहीं चले चलें इस मन्दिरको छोड़कर।

जयसिंह—रक्षा करो, अपर्णा, करुणा करो। दया करके मुझे छोड़कर

चली जाओ। एक काम बाकी है इस जीवनमें, वही हो मेरा प्राणेश्वर, उसका स्थान तुम न छीनो। [तेजीसे प्रस्थान

अपर्णा—बार-बार सहा है, सहस्र बार सहा है, आज क्यो नहीं सहा जाता ? आज क्यो टूटे जा रहे है प्राण मेरे !

पाँचवाँ दृश्य

मन्दिरमे नक्षत्र राय, रघुपति और सोता-हुआ ध्रुव

रघुपति—रो-रोकर सो गया है। जयसिह भी आया था एक दिन इसी तरह मेरी गोदमे, मातृपितृहीन शैशव लेकर अपना। उस दिन इसी तरह रोया था वह, अपने चारो तरफ नया दृश्य देखकर, हताश्वास श्रान्त शोकमें इसी तरह सो गया था संध्या होनेपर, यही देवीके चरणोंके पास। इसे देख कर उसका वह शिशु-मुख, वही शिशु-क्रन्दन, याद आता है !

नक्षत्र राय—महाराज, देर न करो अब, डर लगता है, कहीं राजा न आ जाये खबर पाकर !

रघुपति—कैसे खबर पायेगा राजा ? दसो दिशाएँ घिरी-हुई हैं निशीथकी निद्रासे।

नक्षत्र राय—एक बार मालूम हुआ था मुझे कि कोई छाया आ रही है मेरे पीछे-पीछे !

रघुपति—अपने ही भयकी छाया थी वह।

नक्षत्र राय—और कानोमे सुनाई दिया था क्रन्दनका स्वर !

रघुपति—अपने हृदयका ! दूर हो निरानन्द। आओ, पान करें कारण-सलिल ! (सुरा पीना) मनका भाव जब तक मनमें रहता है, तभी तक वह दिखाई देता है बडा ! कार्य करते समय वह छोटा हो जाता है, जैसे बहुत-सी भाप गलकर पानीकी एक बूद बन जाती है। कुछ नही, कुछ नही, सिर्फ

एक क्षणका काम है। बस, उतनी ही देरकी बात है जितनी देर प्रदीपकी लौ बुझानेमे लगती है। नीदमेसे क्षण-भरमें विलीन हो जायगी गाढी नीदमे इसकी प्राण-रेखा, एक ही क्षणमे, श्रावणकी निशीथमे विजलीकी झलक-सी। केवल वज्र उसका हमेशाके लिए बिधा रहेगा राज-दम्भमें! आओ, आओ युवराज, म्लान हुए बैठे क्यो हो एक किनारेसे स्तब्ध मूक बने, बुझे-हुए दीप-से,– मुसकान नही चेहरेपर! आओ, पान करो आनन्द-सलिल!

नक्षत्र राय—बहुत देर हो गई, महाराज! मै कहता हूं, आज रहने दो। कल होगी पूजा।

रघुपति—देर हो गई! हाँ हाँ, देर तो हो ही गई है। रात खतम होनेको है।

नक्षत्र राय—सुनो, सुनो, किसीके आनेकी आहट है, सुनो!

रघुपति—कहाँ? मुझे तो नहीं सुनाई देती!

नक्षत्र राय—वो देखो, कोई आ रहा है! वो देखो, प्रकाश दीख रहा है वहाँ!

रघुपति—तो खबर लग गई राजाको! अब एक पलकी भी देर न करो। जय महाकाली! (खड्ग उठा लेता है)

गोविन्दमाणिक्य और प्रहरियोंका तेजीसे प्रवेश

राजाके निर्देशानुसार प्रहरियों-द्वारा
रघुपति और नक्षत्र राय
कैद कर लिये जाते हैं

गोविन्दमाणिक्य—ले जाओ इन्हें कारागारमें! कल विचार होगा।

—

चौथा अंक

पहला दृश्य

विचार-सभामें राजा

रघुपति, नक्षत्र राय, सभासद और प्रहरीबृन्द

गोविन्दमाणिक्य (रघुपतिसे)—और कुछ कहना है ?

रघुपति—कुछ नही।

गोविन्दमाणिक्य—अपराध स्वीकार करते हो ?

रघुपति—अपराध ? अपराध मुझसे जरूर हुआ है। देवीकी पूजा समाप्त नहीं कर पाया मै, – मोहमे मूढ होकर अकारण विलम्ब कर दिया मैंने। उसीकी सजा दे रही हैं देवी मुझे, तुम तो मात्र एक निमित्त-कारण हो उसके !

गोविन्दमाणिक्य—सुनो सभासदबृन्द, उपस्थित समस्त जन, राज-नियम है यह, 'पवित्र पूजाके छलसे देवीके आगे जो मोहान्ध देगा जीवोंकी वलि, या उसके लिए करेगा किसी तरहका उद्योग, राज-आज्ञाकी अवज्ञा करके, तो उसे दिया जायगा निर्वासन-दण्ड।' – रघुपति, आठ वर्ष निर्वासनमें रहोगे तुम, तुम्हें राज्यकी सीमाके वाहर छोड़ आयेंगे चार सैनिक जाकर।

रघुपति—देवीके सिवा इस संसारमें ये घुटने नवे नही कभी और-किसीके आगे, फिर भी, हाथ जोड़कर नतजानु होकर आज एक प्रार्थना करूंगा तुमसे, दो दिनका दो अवसर, श्रावणके शेष दो दिनके लिए। उसके बाद शरतके प्रथम प्रत्यूषमें चला जाऊंगा मै तुम्हारे इस दग्ध अभिशाप-ग्रस्त राज्यको छोड़कर, फिर कभी न दिखाऊंगा मुंह अपना।

गोविन्दमाणिक्य—दिया अवसर दो दिनका।

रघुपति—महाराज, राजाधिराज, महिमासागर हो तुम कृपा-अवतार! धूलसे भी अधम हूं मै, दीन अभाजन। [प्रस्थान

गोविन्दमाणिक्य—नक्षत्र, स्वीकार करो अपराध अपना।

नक्षत्र राय—महाराज, दोषी हू मै। इतना भी साहस नहीं कि क्षमाकी भीख मॉगूं। [राजाके पॉव पड़ जाता है

गोविन्दमाणिक्य—बताओ, तुमने किसकी कुमन्त्रणामें आकर इस काममें हाथ लगाया था? स्वभावसे कोमल हो तुम, ऐसी भीषण बुद्धि तुम्हारी अपनी नहीं हो सकती।

नक्षत्र राय—और किसे दोष दूं, प्रभु! और-किसीका नाम नहीं लेना चाहता इस पाप-मुखसे। सिर्फ मै, मै ही अकेला हूँ अपराधी। अपनी पाप-मन्त्रणामें आप ही डूब मरा हूं। शत-सहस्र दोष क्षमा किये हैं तुमने अपने इस निर्बोध अयोग्य भाईके, एक बार और क्षमा करो।

गोविन्दमाणिक्य—नक्षत्र, छोड़ो पॉव, उठो, सुनो मेरी बात। क्षमा करना क्या मेरे हाथ है? विचारक हूं मै न्यायासनपर बैठा, अपने शासनमें आप ही आबद्ध हूं, बन्दीसे भी बढ़कर बन्दी! एक ही अपराधमे एकको मिले दण्ड, और दूसरेको मिल जाय मुक्ति, इतनी क्षमता विधाताको भी नहीं, मै तो हूं ही क्या चीज!

सबके सब—क्षमा करो, प्रभु, क्षमा करो। नक्षत्र भाई हैं महाराजाके।

गोविन्दमाणिक्य—स्थिर होओ सब। भाई बन्धु कोई भी नही मेरा, इस आसनपर हूं जब तक। प्रमाणित हो चुका है अपराध। छोड़कर त्रिपुर-राज्यकी सीमा, ब्रह्मपुत्र नदीके किनारे, जहाँ है राज-गृह तीर्थ-स्नानार्थियोंके लिए, वहाँ जकर बितायेगा आठ वर्ष निर्वासनमे नक्षत्र!

प्रहरीगण नक्षत्र रायको ले जाना चाहते हैं
इतनेमें राजा सिंहासनसे उतर आते हैं

—देते जाओ विदाका आलिङ्गन, भाई मेरे! यह दण्ड अकेले तुम्हींको नहीं मिला, नक्षत्र, मेरे लिए भी है यही दण्ड। आजसे राज-प्रासाद चारों

तरफसे काँटोंकी तरह चुभता रहेगा मेरे हृदयमें। तुम्हारे साथ आशीर्वाद रहा मेरा, जब तक दूर रहोगे मुझसे, देव तुम्हारी रक्षा करेंगे।

[नक्षत्रका प्रस्थान

नयन रायका तेजीसे प्रवेश

नयन राय—महाराज, संकट! संकट! चारों तरफसे महा संकटने घेर लिया है!

गोविन्दमाणिक्य—राजा क्या आदमी नहीं? हाय रे विधाता, हृदय क्या तुमने उसका गढा नहीं, अति-दीन-दरिद्रके समान भी? दुःख दोगे और सबोंके समान, और रोनेका अवसर न दोगे जरा भी! काहेका संकट, कैसा संकट, बताओ शीघ्र!

नयन राय—मुगल-सेनाके साथ आ रहा है चाँदपाल, नाश करनेको त्रिपुराका!

गोविन्दमाणिक्य—ऐसा कहना उचित नही, नयन राय, तुम्हारे लायक बात नही यह। शत्रु हो सकता है चाँदपाल तुम्हारा, इससे क्या कलङ्क थोपोगे तुम उसके नामपर?

नयन राय—बहुत दे चुके हो, महाराज, दण्ड इस दीन अधीनको। पर आजका यह अविश्वास उन सबसे बढ गया, महाराज! चरण-च्युत अवश्य हूं मै महाराजका, इसके मतलब यह नही कि मेरा इतना अध पतन हो गया हो!

गोविन्दमाणिक्य—अच्छी तरह बताओ फिरसे, क्या है तुम्हारा कहना। फिरसे समझ देखूं।

नयन राय—मिलकर मुगलोंके साथ चाँदपाल तुम्हें राज्यच्युत करना चाहता है।

गोविन्दमाणिक्य—तुमने कैसे जाना?

नयन राय—जिस दिन महाराजने मुझे निरस्त्र कर दिया, उसी दिन अस्त्रहीन लज्जासे मै चला गया देशान्तर। वहाँ सुना कि आसामके साथ

युद्ध छिड़नेवाला है। चल दिया मैं सेनामे भरती होने। रास्तेमे देखा कि मुगल-सेना बढ रही है त्रिपुराकी ओर, और उनके साथ है चाँदपाल! अनुसन्धानसे मालूम हो गया उसका षड्यन्त्र। इसीसे दौड़ा आ रहा हूं राज-चरणोंमें।

गोविन्दमाणिक्य—सहसा यह क्या हो गया ससारमे, हे विधाता! इन दो-ही-चार दिनोमें धरणीके किस छिद्र-पथसे निकल आया सम्पूर्ण नागवंश! रसातलसे निकलकर पृथ्वीपर घूम रहे है काल-नाग चारो तरफ फन उठाये! आ गया क्या प्रलय-काल? नही-नही, समय नही अब आश्चर्य प्रकाशका। सेनापति, लो तुम सेनाका भार। यात्रा करो शुरू।

दूसरा दृश्य

मन्दिरके प्राङ्गणमें जयसिह और रघुपति

रघुपति—गौरव गया, गर्व गया, तेज गया, गया शेष ब्राह्मणत्व! ओरे वत्स, अब मै तेरा नही रहा! कल मने बिना किसी सशयके आदेश दिया है तुझे, गुरुके गौरवके साथ, आज सिर्फ अनुनयके साथ भिक्षा माँगनेका अधिकार है मुझे! अन्तरात्माकी वह दीप्ति बुझ चुकी है, जिसके बलपर तुच्छ समझता था मै ऐश्वर्यकी ज्योतिको, राजाके प्रतापको! नक्षत्र आकाशसे टूटकर धरतीपर आ पडे तो उससे श्रेष्ठतर बन जाता है मिट्टीका प्रदीप। उसे ढूंढता फिरता है खद्योत धूलमे, कैसा परिहास है! दीप प्रतिदिन बुझता है, प्रतिदिन जलता है, किन्तु तारा एक बार बुझता है तो फिर चिर-अन्धकार ही है। मे उसी नक्षत्र-सा चिर-दीप्तिहीन हूं। बहुत छोटी है परमायु, देवताका अति-तुच्छ दानके सिवा और कुछ नहीं वह. उसीके दो दिन राजद्वारमे नतजानु होकर भीखमें माँग लिये हैं। जयसिंह, वे दो दिन व्यर्थ न चले जायें, इतना ही चाहता हूं मै! वे दो दिन अपना कलक मिटाकर मर जायें, अपना काला मुंह राज-रक्तसे लाल करके वे मिट

जायें, बस, और कुछ नहीं चाहिए मुझे। वत्स, निरुत्तर क्यों हो? यह गुरुका आदेश नहीं ; जिसने तुझे बचपनसे पालन किया है उसका अनुरोध है। फिर भी निरुत्तर! हाय, पितृहीनका पिता भी न रहा अब मैं? इतना दुःख इस तरह याद दिलाना पड़ रहा है तुझे आज! हाय-हाय, कृपा-भिक्षा भी सही जा सकती है, किन्तु प्यारकी भीख माँगता है जो अभागा, भिक्षुकोंसे भी अधम भिक्षुक है वह। वत्स, फिर भी निरुत्तर? तो फिर नवाता हूं घुटने। जो था इतना-सा, इन घुटनोंसे भी छोटा, उसके आगे झुक जायें ये घुटने मेरे। पुत्र, भीख माँगता हूं मैं!

जयसिंह—बस, अब रहने दो, पिता, इस विदीर्ण हृदयपर अब न प्रहार करो वज्रका। राज-रक्त चाहती है देवी, वही उंडेल दूंगा उसके चरणोंपर। जो चाहेगी देवी, सब दूंगा मैं। सारा ऋण चुका जाऊँगा। वही होगा, वही होगा जो देवी चाहती है! वही होगा! [प्रस्थान

रघुपति—तो वही हो! देवी चाहती है, यही कहके देना! मैं अब कोई भी नही तेरा, हाय, अकृतज्ञ! देवीने क्या किया है तेरा? बचपनसे देवीने तुझे पालन किया है प्रतिदिन? रोगी होनेपर क्या की है उसने सेवा तेरी? भूख लगनेपर दिया है उसने अन्न तेरे मुँहमें? मिटाई है ज्ञानकी प्यास? अन्तमें इस अकृतज्ञताकी वेदना ली है क्या देवीने हृदय खोलकर? हाय रे कलिकाल! तू ही रह, मै चला।

तीसरा दृश्य

राज - प्रासादमें राजा

नयन रायका प्रवेश

नयन राय—विद्रोही सेनाको लौटा लाया हूं, महाराज! युद्धके लिए तैयार है वह। आज्ञा दो, राजन्, आगे बढ़ूं, आशीर्वाद दो—

गोविन्दमाणिक्य—चलो सेनापति, मै खुद चलूंगा रणक्षेत्रमें।

नयन राय—जब तक इस देहमें प्राण हैं, महाराज शान्त रहें, संकटके मुंहमें जाकर—

गोविन्दमाणिक्य—सेनापति, सबके संकटमेंसे अपना अंश लेना चाहता हूं मै। मेरा राज-अंश सबसे ज्यादा है। आओ सैनिको, ले लो मुझे अपने बीच। अपने राजाको तुम दूर-सिंहासनमें निर्वासित करके समर-गौरवसे वंचित न करो।

गुप्तचरका प्रवेश

गुप्तचर—निर्वासनके रास्तेमें मुगलोंने छीन लिया है कुमार नक्षत्र रायको। राज-पदपर अभिषिक्त किया है उन्हें। आ रहे हैं वे सेना लेकर राजधानीकी ओर।

गोविन्दमाणिक्य—चलो, छुट्टी हुई! अब कोई डर नहीं। युद्धसे छुट्टी मिल गई।

प्रहरीका प्रवेश

प्रहरी—शत्रु-शिविरसे पत्र आया है, महाराज!

गोविन्दमाणिक्य—देखूं।—नक्षत्रके हस्ताक्षर हैं! शान्तिका संवाद होगा शायद।—यही है स्नेहका सम्भाषण! यह तो नक्षत्रकी भाषा नहीं। चाहता है मेरा निर्वासन, नही तो बहा देगा रक्तस्रोतसे सोनेकी त्रिपुरा! भस्म कर देगा मातृभूमिको! वन्दिनी होंगी मुगलोंके अन्तःपुरमे त्रिपुराकी नारियाँ! देखूं, देखूं। हैं तो उसीके अक्षर – 'महाराज नक्षत्रमाणिक्य!' महाराज! देखो देखो, सेनापति, यह देखो, राजदण्डमें निर्वासित किया गया हूं मै, त्रिपुराका राजा! ऐसा ही होता है विधिका खेल!

नयन राय—निर्वासन-दण्ड! यह कैसी स्पर्धा! अभी तो युद्ध समाप्त भी नहीं हुआ!

गोविन्दमाणिक्य—यह तो मुगलोंका दल नही। त्रिपुराके राजपुत्रने राजा होनेकी ठानी है, इसके लिए युद्ध क्यों?

नयन राय—राज्यका मंगल—

गोविन्दमाणिक्य—राज्यका मंगल होगा ? खड़े होकर दोनो भाई आमने-सामने, चलायेंगे भ्रातृ-हृदय लक्ष्य करके मृत्युमुखी तलवार ! राज्यका मंगल होगा उसमे ? राज्यमे सिर्फ सिहासन है, – गृहस्थका घर नही, भाई नहीं, भ्रातृत्वका बन्धन नहीं यहाँ ? देखूं, देखूं, और एक बार देखूं, क्या यह उसीके हस्ताक्षर हैं ? नक्षत्रकी अपनी रचना है यह ? मै दस्यु हूं ! देवद्वेषी हूं, अन्यायी हूं, इस राज्यका अकल्याण हूं मै ! नहीं नही, यह उसकी रचना हरगिज नही हो सकती। रचना चाहे जिसकी भी हो, अक्षर तो उसीके हैं। अपने हाथसे लिखा तो उसीने है। किसी भी सर्पका विष हो, अपने अक्षरोंके मुंहमें लगाया तो उसीने है वह विष ! भोके हैं मेरी छातीमे ! रे विधि, यह तेरी ही दी-हुई सजा है, उसकी नही। निर्वासन ! होने दो, ऐसा ही होने दो। उसके निर्वासन-दण्डको उसकी तरफसे मैं ही झेलूंगा विनम्र नीरव होकर।

पाँचवाँ अंक

पहला दृश्य

मन्दिरके बाहर आँधी चल रही है

पूजाकी सामग्री लेकर रघुपतिका प्रवेश

रघुपति—इतने दिन बाद, आज जागी है देवी ! कैसा रोष-हुङ्कार है ! अभिशापका वज्रपात करती-हुई उडी चली जा रही है नगरके ऊपरसे, तिमिर-रूपिणी ! तेरी प्रलय-सङ्गिनियाँ भी आज भीषण क्षुधाकी ताडनासे झकझोरे डाल रही हैं विश्व-महातरुको ! ह ह ह ह ! आज मिटा दूंगा तेरा दीर्घ-उपवास ! भक्तको संशयमे डालकर इतने दिन कहाँ थी देवी ? तेरा खड्ग तू न उठावे तो हमसे उठ सकता है भला ? कैसा आनन्द है ! आज तेरी चण्डी-मूर्ति देखकर साहससे चित्त भर उठा है, संशय दूर

हो गया, हतसम्मान नत मस्तक आज ऊचा हो गया नये तेजसे। हाँ हाँ, आ रही है, सुन सुन, पगध्वनि सुन ! आ रही है तेरी पूजा ! जय महादेवीकी जय !

अपर्णाका प्रवेश

—दूर हो, दूर हो मयाविनी, राक्षसी ! दूर हो ! जयसिहको चाहती है तू ! अरी ओ सर्वनाशिनी, महापातकिनी ! दूर हो यहाँसे। [अपर्णाका प्रस्थान —यह कैसा अकला-विघ्न ! जयसिह यदि न आये ! हरगिज नहीं, सत्य भङ्ग वह कभी नही कर सकता। – जय महाकाली, सिद्धिदात्री ! जय भयङ्करी ! अगर किसी सङ्कटमें पड जाय, कोई रोक ले, पकड़ ले, अगर उसके प्राण चले जायें प्रहरीके हाथसे ? – जय मा अभया ! जय मा भक्त-सहाया, भक्तवत्सला ! जय मा जाग्रत दवी ! जय सर्वजयी ! भक्त-वत्सलाका दुर्नाम न हो इस संसारमें, मा ! देखना मा, शत्रुपक्ष कहीं हँसी न उडावे तेरी नि शंक कौतुकसे ! मातृ-अहंकार अगर चूर्ण हो जाय सन्तानका, 'मा' कहके फिर कोई न पुकारेगा तुझे ! हाँ हाँ, सुनाई दे रही है पगध्वनि। आ तो रहा है जयसिह। जय नृमुण्डमालिनी ! जय पाषाण-दलिनी महाशक्ति !

जयसिहका तेजीसे प्रवेश

—जयसिह, राज-रक्त कहाँ है ?

जयसिह—है, है ! छोडो मुझे। स्वय करूगा मै रज-रक्त दान। – राज-रक्त चाहिए तुझे दयामयी, जगत्पालिनी माता ? नहीं तो किसी भी तरह तेरी प्यास नही मिट सकती ? मै राजपूत हूं, मेरे पूर्व-पितामह थे राजा, अब भी राज्य करते हैं मेरे मातामहके वशज, – राज-रक्त है मेरी देहमें ! यही रक्त दूगा तुझे। यही हो शेष रक्त, माता ! इसी रक्तसे मिट जाय तेरी अनन्त पिपासा, री रक्ततृषातुरा !

छातीमें छुरी भोंक लेता है

रघुपति—जयसिह ! जयसिह ! निर्दय, निष्ठुर ! यह क्या किया तूने सर्वनाश मेरा ! जयसिह, अकृतज्ञ, गुरुद्रोही, पितृधर्मघाती, स्वेच्छाचारी !

जयसिंह, कुलिश-कठिन ! अरे ओरे जयसिंह, मेरे एकमात्र प्राण, प्राणाधिक,— जीवन-मन्थनका धन ! जयसिंह, वत्स मेरा, गुरुवत्सल प्रिय शिष्य मेरा ! लौट आ, लौट आ, तेरे सिवा और कुछ नही चाहिए मुझे। अहंकार अभिमान देवता ब्राह्मण सब मिट जायँ ! तू रह, तू आ, लौट आ—

अपर्णाका प्रवेश

अपर्णा—पागल कर देगा मुझे ! जयसिंह, कहाँ है जयसिंह ?

रघुपति—आ बेटी अमृतमयी ! बुला, बुला अपने सुधाकण्ठसे, पुकार व्यग्र स्वरसे, बुला, बुला जी-जानसे ! बुला जयसिंहको ! तू ले जा उसे बेटी, अपने पास, मै नही चाहता।

अपर्णा मूर्च्छित हो जाती है

रघुपति (प्रतिमाके चरणोंपर सिर पटकता-हुआ)—लौटा दे ! लौटा दे ! लौटा दे ! लौटा दे !

दूसरा दृश्य

राज-प्रासादमें गोविन्दमाणिक्य और नयन राय

गोविन्दमाणिक्य—अभीसे आनन्दध्वनि ! अभीसे पहन ली दीपमाला निर्लज्ज प्रासादने ! उठ रहा है राजधानीके बहिर्द्वारपर विजय-तोरण, पुलकित नगरकी आनन्दसे उठाई-हुई बाहुओं-सा ! अभी तो प्रासादसे बाहर भी नही निकला मै, छोड़ा नहीं सिंहासन ! इतने दिन राजा था,—किसीका भी उपकार नहीं किया कोई मैंने ? किसी अन्यायको नही किया दूर ? किसी अत्याचारका नहीं किया दमन कभी ? धिक् धिक् निर्वासित राजा तुझे ! आप ही अपना विचार करके अपने शोकमे आप ही गिराता है आँसू आज ! मर्त्य-राज्य गया, जाने दो, अपना राजा तो फिर भी हूं मै ! महोत्सव होने दो आज अन्तरात्माके सिंहासन-तले !

गुणवतीका प्रवेश

गुणवती—प्रियतम, प्राणेश्वर, अब और क्यों, नाथ! अब तो सुन लिया देवीका निषेध! आओ प्रभु, आज रातको शेष पूजा करके राम-जानकीकी तरह चले चलें निर्वासनमें दोनों।

गोविन्दमाणिक्य—प्रियतमे, आज शुभ दिन है मेरा। राज्य गया, जाने दो, तुम्हें तो पा गया फिरसे! आओ प्रिये, चलें दोनों मिलके देवीके मन्दिरमें, केवल प्रेम लेकर, केवल पुष्प लेकर, मिलनके अश्रु लेकर, विदाका विशुद्ध विषाद लेकर। आज रक्त नहीं, हिंसा नहीं, और कुछ नहीं, प्रेम, प्रेम, एकमात्र प्रेम है!

गुणवती—मेरी भी एक भीख है, बात रखो, नाथ!

गोविन्दमाणिक्य—बोलो, देवी!

गुणवती—पाषाण न होओ। राज-गर्व छोड दो। देवतासे पराभव न मानना चाहो तो न सही, मेरी यन्त्रणा देखकर विगलित हो तुम्हारा हृदय। तुम तो निष्ठुर कभी भी न थे, नाथ! किसने कर दिया तुम्हें पाषाण! किसने तुम्हें छीन लिया मेरे सौभाग्यसे? कर दिया मुझे राजा-हीन रानी!

गोविन्दमाणिक्य—प्रिये, मुझपर विश्वास करो एक बार, बिना-समझे समझो एक बार मेरी तरफ देखकर। आँसू देखके समझो, मुझे जो प्यार करती हो उस प्यारसे समझो। – अब रक्तपात नहीं! मुंह न फेरो, देवी! अब न छोड़ो मुझे, निराश न करो आशा देकर। जाओ अगर, मार्जना करके जाना! [गुणवतीका प्रस्थान

—चली गई! – कैसा कठिन-कठोर निष्ठुर है संसार! – अरे कौन है! कोई नहीं। चल दिया। विदा, शेष विदा, हे सिंहासन! हे पुण्य-प्रासाद, मेरे पूर्वजोंकी गोद, निर्वासित पुत्र तुम्हें प्रणाम करके लेता है विदा आज! प्रणाम! प्रणाम, हे सिंहासन!

तीसरा दृश्य

अन्तःपुरमें गुणवती

गुणवती—बजाओ, बजाओ बाजे! आज रातको पूजा होगी। आज मेरी प्रतिज्ञा पूरी होगी। लाओ वलि! लाओ जवाकुसुम! खड़ी हो सब? आज्ञा नहीं सुनोगी? मै कोई भी नही! राज्य चला गया तो क्या इत्ती-सी भी रानी बाकी नही बची, आदेश सुनें जिसका किंकर-किंकरी? यह लो कंकण, यह लो हीरोंका कण्ठा, यह लो सबके सब आभरण! जल्दी जाकर करवाओ पूजाकी तैयारियाँ, देवीकी पूजा होगी आज! मा महामाया, इस दासीको रखना अपने चरणोंमे।

चौथा दृश्य

मन्दिरमें रघुपति

रघुपति—देखो, देखो, किस तरह खड़ा है जड पाषाणका स्तूप! मूढ निर्बोधकी तरह! मूक, पंगु, अन्धी, बहरी! तेरे ही पास आकर सारा व्यथित विश्व रो-रो मरता है! पाषाण-चरणोंमें तेरे, महान हृदय अपनेको चूर्ण-विचूर्ण कर देता है पछाड़-पछाडकर! ह हः ह ह.! किस दानवका है यह क्रूर-परिहास, जो जगतमें बैठा है इतना उच्च आसन जमाये! 'मा' कहके जितना ही पुकारते हैं संसारके जीव सब, उतना ही घोरतर अट्टहास्य हँसकर करती है विद्रूप तू! दे, लौटा दे, लौटा दे मेरे जयसिंहको! लौटा जल्दी! दे मेरे जयसिंहको, राक्षसी, पिशाची! (प्रतिमाको झकझोर डालता है) सुनाई नहीं देता, बहरी! कान नहीं हैं? जानती है, क्या किया है तूने? किसका खून पीया है, जानती है? किस पुण्य-जीवनकी वलि ली है जानती

है ? स्नेह-दया-प्रीतिसे भरे महा-हृदयकी ! (क्षण-भर स्तब्ध रहकर) – जा, जा ! रह तू चिरकाल इसी तरह, इस मन्दिरके सिंहासनपर, सरल भक्तिके प्रति करती रह गुप्त उपहास ! – दूंगा तुझे 'पूजा' प्रतिदिन, करूंगा प्रणाम मै चरणोंमे, दयामयी 'मा' कहकर पुकारूंगा सदा ; तेरा परिचय न दूंगा किसीको, दे, दे, लौटा दे सिर्फ मेरे जयसिहको ! – किसके आगे रो रहा हूं मै ! तो जा, दूर हो, दूर हो, दूर हो राक्षसी ! हृदयदलिनी पाषाणी ! दूर हो यहांसे ! हलकी हो जाय पृथ्वीकी छाती !

रघुपति प्रतिमा उठाकर नीचे गोमतीके पानीमें फेंक देता है
मशाल और गाजे-बाजेके साथ गुणवतीका प्रवेश

गुणवती—जय ! जय महादेवीकी जय ! देवी कहां, प्रभु ?

रघुपति—देवी नही है ।

गुणवती—लौटाओ देवीको, गुरुदेव, ले आओ उन्हें ; आज रोष शान्त कर दूंगी उनका । लाई हू पूजा आज ! राज्य, पति, सब-कुछ छोडकर पालन किया है सिर्फ अपना प्रण मैने । दया करो, दया करके देवीको वापस ले आओ, आजकी मात्र एक रातके लिए । कहां हैं देवी !

रघुपति—कहीं भी नही । ऊपर नहीं, नीचे नही, कही भी नही देवी । कही भी नही थी वह कभी भी ।

गुणवती—प्रभु, यहां नहीं थी क्या देवी ?

रघुपति—देवी कहती हो उसे ! इस संसारमे कही भी होती अगर देवी, तो उस पिशाचिनीको 'देवी' कहना क्या कभी सह सकती थी देवी ? महत्त्व क्या फिर हृदय विदारकर निष्फल-रक्त बहानेमे मूढ पाषाणके चरणोंमे ! देवी कहती हो उसे ! पुण्य-रक्त पान करके वह महाराक्षसी फटकर मर गई । नहीं है देवी, जाओ, जाओ—

गुणवती—गुरुदेव, मेरा वध न करो । सच-सच बताओ, क्या बात है ? देवी नहीं है ?

रघुपति—नहीं है ।

गुणवती—देवी नही ?

रघुपति—नही ।

गुणवती—देवी नही ? तो कौन है वहाँ ?

रघुपति—कोई नही । कुछ नही । जाओ, जाओ यहाँसे—

गुणवती (परिचारिकाओसे)—ले जा, ले जा पूजा ! चल, चल, जल्दी चल । बता जल्दी, किस मार्गसे गये हैं महाराज ?

अपर्णाका प्रवेश

अपर्णा—पिता !

रघुपति—जननी, जननी, जननी मेरी ! – 'पिता' ! यह तो भर्त्सनाका तिरस्कारका नाम नही, – 'पिता' ! बेटी, मा मेरी, इस पुत्रघातीको 'पिता' कहके जो पुकारता था वही रख गया है सुधामय नाम तेरे कण्ठमें, इतनी दया कर गया है ! अहा, बुला, बुला फिरसे एक बार !

अपर्णा—पिता ! आओ, इस मन्दिरको छोडकर कही दूर चले चले हम दोनो ।

पुष्प-अर्घ्य लेकर राजाका प्रवेश

राजा—देवी कहाँ ?

रघुपति—देवी नही है ।

राजा—यहाँ यह रक्तधारा कैसी ?

रघुपति—यही है शेष पुण्य-रक्त इस पाप-मन्दिरमें ! जयसिहने बुझा दी आज अपने रक्तसे हिसारक्त-शिखा !

राजा—धन्य, धन्य, धन्य जयसिह ! पूजाकी पुष्पाञ्जलि यह तुम्हींको सौंपता हू ।

गुणवती—महाराज !

राजा—प्रियतमे !

गुणवती—आज देवी नहीं है, – तुम्हीं एकमात्र देवता हो मेरे !

राजा—गया पाप । देवी आज लौट आई मेरी देवीमें !

अपर्णा—पिता, चले आओ ।

रघुपति—पाषाण टूट गया, – जननीने दर्शन दिये है आज प्रत्यक्ष प्रतिमाके रुपमें ! बेटी, मा, जननी अमृतमयी !

अपर्णा—पिता, चले आओ !

भाभी

१

असलमें, भूपति अगर कोई काम न भी करता तो भी उसका काम चल सकता था। कारण, उसके पास काफी पैसा था; और देश भी गरम ठहरा। मगर ग्रहका फेर कि आप 'कामके आदमी' होकर पैदा हुए थे! और इसलिए उन्हें एक अंग्रेजी अखबार निकालना ही पडा। उसके बाद फिर उन्हें समयकी लम्बाईपर कभी भी विलाप नही करना पडा।

छुटपनसे ही उन्हें अंग्रेजी लिखने और लेक्चर देनेका शौक था। कोई जरूरत न होनेपर भी वे अंग्रेजी अखबारोंके लिए चिट्ठियाँ लिखा करते थे, और कुछ वक्तव्य न होनेपर भी सभा-समितियोंमें जा-जाकर लेक्चर दिया करते थे।

उन जैसे धनी आदमीको अपने दलमे पानेकी गरजसे राजनैतिक दलपतियोंने भी भूपतिकी तारीफ करनेमें कोई कसर नहीं रखी, और उसका नतीजा यह हुआ कि अपनी अंग्रेजी रचना-शक्तिके विषयमे उनकी धारणा असलियतसे बहुत आगे बढ गई।

अन्तमें, उनके सम्बन्धी उमापति भी अपनी वकालत छोडकर बहनोईकी सहायता करने आ गये। बोले—"तुम एक अंग्रेजी अखबार निकालो। तुम्हारी ऐसी असाधारण लेखनी है" वगैरह-वगैरह।

भूपति बाबू अत्यन्त उत्साहित हो उठे। सोचा, दूसरोंके अखबारोमे पत्र प्रकाशित करनेमें कोई गौरव नही। अपने अखबारमे स्वाधीन लेखनी अबाधगतिसे पूरी तेजीके साथ दौड़ सकती है। और, इसके कुछ ही दिन बाद, देखा गया कि सम्बन्धी-साहब पत्रके सहकारी-सम्पादक बने हुए हैं; और बहनोई-साहब, बहुत ही कम उमरमे, प्रधान-सम्पादककी गद्दीपर विराजमान हैं।

खासकर कम उमरमे सम्पादकीय नशा और राजनीतिक नशा बहुत जोर करते हैं। उसपर, भूपतिको जोशपर चढाकर उत्साह देनेवाले भी काफी मिल गये।

इस तरह भूपति तो अखबारके नशेमे चूर हो रहे थे, और उधर उनकी बालिका वधू श्रीमती चारुलता धीरे-धीरे यौवनकी ओर कदम बढा रही थी। अखबारके सम्पादकको इस जरूरी समाचारका पता तक न था! वे तब भारत-सरकारकी सीमान्त-नीति किस तरह धीरे-धीरे बढती हुई संयमकी सीमा लॉघ रही है, इस विषयमे अपना मतामत प्रकट करनेमे व्यस्त थे।

पतिके पास पैसा काफी था, लिहाजा चारुलताको घरका कोई काम-काज नही करना पडता था। उसके चेष्टाहीन जीवनका एकमात्र कार्य ही यह था कि परिपूर्ण अनावश्यकताके बीच फल न-देनेवाले फूलकी तरह दिन-रात केवल खिलते ही रहना। उसके किसी बातकी कमी नही थी, और इसीलिए उसके हॅसी-खेलमें कही कोई विराम भी नही था।

ऐसी हालतमे मौका पाते ही कुलवधुऍ अपने पतिके विषयमे बहुत-कुछ ज्यादती करने लगती हैं, और दाम्पत्य-लीलाकी सीमान्त-नीति घर-गृहस्थीकी सीमा लाँघकर समयसे असमयमे और विहितसे अविहितमे पहुॅच जाती है। किन्तु चारुलताको वह मौका भी नही मिला। अखबारकी चहारदीवारी तोड़कर पतिपर अधिकार करना उसके लिए कठिन हो गया।

युवती स्त्रीकी तरफ ध्यान आकर्षित करके रिश्तेमे बड़ी किसी बडी-बूढीने जब भूपतिको फटकारा, तो सचेत होकर उन्होने कहा—"तब तो चारुके पास किसी सहेलीका रहना जरूरी है, अकेली बेचारी क्या करे बैठी-बैठी!"

इसी सिलसिलेमे एक दिन उमापतिसे उन्होने कहा—"तुम अपनी स्त्रीको यहाँ ले आओ न! बराबरकी कोई स्त्री पास नही, इसलिए जरूर चारुको सूना-सा लगता होगा।"

स्त्री-सगका अभाव ही चारुके लिए अत्यन्त दु खदायी है, बस, इतना ही सम्पादककी समझमे आया, और सरहज मन्दाकिनीको अपने घर लाकर बेचारा निश्चिन्त भी हो गया।

स्त्री-पुरुष प्रेमोन्मेषके प्रथम अरुणालोकमें जब कि परस्पर एक-दूसरेको अपूर्व महिमासे चिर-नवीन समझने लगते हैं, दाम्पत्य-जीवनका वह स्वर्ण-प्रभासे मण्डित ऊषाकाल अचेतन-अवस्थामें कब विदा लेकर चला जाता है, किसीको मालूम ही नही पड़ता। इस दम्पतिके जीवनमें भी ठीक वैसा ही हुआ, नवीनताका स्वाद पानेके पहले ही दोनों एक दूसरेके लिए पुराने परिचित और अभ्यस्त हो गये।

चारुलताका पढ़ने-लिखनेकी तरफ एक स्वाभाविक आकर्षण था, इसलिए दिन उसके बोझ नही बने; उसने अपनी कोशिश और नाना कौशलसे पढने-लिखनेका इन्तजाम कर लिया था। भूपतिका एक फुफेरा-भाई अमल थर्ड-ईयरमे पढता था। चारु उससे पढ लिया करती थी, और इतने-से कामके बदलेमें उसे अमलकी कुछ ज्यादतियाँ भी सह लेनी पड़ती थीं। अकसर उसे अमलको अंग्रेजी होटलमे खाने और अंग्रेजी किताबें खरीदनेका खर्च देना पडता था। इसके अलावा, अमल कभी-कभी अपने मित्रोंको भी निमन्त्रित करके खिलाता-पिलाता था, और उस यज्ञका सारा भार गुरु-दक्षिणाके तौरपर चारुलताको ही उठाना पडता था। पति भूपतिकी तरफसे पत्नी चारुलतापर किसी तरहकी माँगका भार नही था, किन्तु पतिका फुफेरा भाई अमल उसे जरा-सा पढाकर इतनी ज्यादा फरमाइशें पेश किया करता कि जिसकी हद नही। इसपर चारुलता कभी-कभी बनावटी गुस्सा और विद्रोहका भाव भी दिखाया करती, किन्तु उसका कुछ नतीजा नहीं निकलता; क्योंकि किसी एक आदमीके किसी काममे आना और स्नेहके नाना उत्पात सहना उसके लिए बहुत जरूरी हो गया था।

एक दिनकी बात है। अमलने कहा—"भाभी, हमारे कालेजमें एक राजाका दामाद पढता है; और वह खास राजाके खास रनवासमे हाथसे बुने-हुए कारपेटके जूते पहनके आता है,—मुझसे तो नही सहा जाता। भाभी, मुझे भी वैसे ही कारपेटके जूते चाहिए, नही-तो मेरी पद-मर्यादा अब धूलमे ही मिलनेवाली है, समझ लो!"

चारुने कहा—"हाँ हाँ, मै यही जो किया करूं रात-दिन, मेरे और कोई

काम थोड़े ही है, बैठी-बैठी तुम्हारे लिए जूते बुना करू ! दाम दिये देती हू, बाजारसे खरीद लेना।"

अमलने कहा—"सो नही होनेका !"

चारु जूतेका कार्पेट बुनना नही जानती, और अमलके सामने वह इस बातको स्वीकार भी नही करना चाहती। जब कि खुद अमल चाहता है तो संसारमें इस एकमात्र प्रार्थीकी प्रार्थनाको पूरी किये बिना भी वह कैसे रह सकती है ! अमल जब कालेज चला जाता, तब वह छिपे-छिपे खूब मन लगाकर कारपेटकी सिलाई सीखा करती। और, अमल जब खुद जूतेकी बात बिलकुल भूल चुका, तो एक दिन शामको चारुने उसे खास तौरसे निमन्त्रण देकर बुलाया।

गरमियोंके दिन थे। छतपर आसन बिछाकर अमलके लिए थाली परोसी गई। थाली पीतलके ढकनेसे ढकी हुई थी। अमल कालेजके कपडे उतारकर, हाथ-मुँह धोकर, फिट-फाट होकर ऊपर पहुँचा।

आसनपर बैठकर उसने थालीका ढक्कन उठाया, और खोलते ही देखा कि थालीमें बहुत ही खूबसूरत पशमी कारपेटके नये जूते रखे हैं ! इसपर चारु कहकहा मारकर हँस पड़ी।

जूते पाकर अमलकी उमगें और भी आगे बढने लगीं। अबकी गुलूबन्द चाहिए तो अबकी रेशमी रूमालके चारों तरफ फूलदार जाली लगा देनी होगी ! एक दिन फरमाइश हुई कि बाहरवाले बैठने-उठनेके कमरेमे उसकी जो आराम-कुरसी है उसपर तेलका दाग लग गया है, उसपर चढानेके लिए रेशमी बेल-बूटेदार गिलाफ चाहिए !

हर बार चारुलता उसकी फरमाइशका विरोध करके कलह करती और हर बार बडे जतन और स्नेहके साथ शौकीन अमलका शौक पूरा कर देती। अमल बीच-बीचमें कभी-कभी पूछ भी लिया करता, "भाभी, कितना और बाकी है ?"

चारुलता झूठमूठको कह देती, "अभी तो शुरू ही नहीं किया।" और कभी कहती, "मुझे उसकी याद ही नहीं रही।"

पर अमल कब छोड़नेवाला था! रोज याद दिला देता, और मचलता रहता। हाथ धोकर पीछे-पड़नेवाले अमलके मनमें उत्पातका उद्रेक करा देनेके लिए ही चारु अपनी उदासीनता दिखाकर विरोध पैदा करती, और सहसा एक दिन उसकी प्रार्थना पूरी करके कौतुक देखा करती।

धनाढ्य पतिके घर चारुको और-किसीके लिए कुछ नहीं करना पड़ता। सिर्फ एक अमल ही ऐसा है जो उससे काम कराये बगैर नहीं मानता। लेकिन कुछ भी हो, इसमें, सन्देह नहीं कि इन्हीं सब छोटे-मोटे शौकके कामोंमें ही चारुलताकी हृदयवृत्ति चरितार्थ होती थी।

भूपतिके अन्तःपुरमें जो थोड़ी-सी जमीन खाली पड़ी थी उसे अगर बगीचा कहा जाय, तो जरा-कुछ अत्युक्ति ही होगी। खैर, उस बगीचेमें मुख्य वनस्पति थी विलायती आमड़ेका एक पेड़।

उस बगीचेकी तरक्कीके लिए चारु और अमलने आपसमें एक कमेटी बना ली है। कुछ दिनसे दोनों मिलकर कागजपर चित्र और नक्शा बनाकर बड़े उत्साहसे बगीचेकी कल्पना प्रतिफलित कर रहे हैं।

अमलने कहा—"भाभी, हमारे इस बगीचेमें प्राचीनकालकी राजकुमारीकी तरह तुम्हें अपने हाथसे पेड़ोंको पानी देना पड़ेगा!"

चारुने कहा—"और पीछेके उस कोनेमें एक झोंपड़ी बनानी होगी, जिसमें हरिनके बच्चे रहेंगे।"

अमल बोला—"और, एक छोटी-सी झील भी बनानी होगी, जिसमें हंस तैरा करेंगे।"

चारुलताने इस प्रस्तावपर उत्साहित होकर कहा—"और मैं उसमें नील-कमल लगाऊँगी, बहुत दिनोंसे मुझे नील-कमल देखनेकी साध है।"

अमल बोला—"उस झीलपर एक पुल बाँधा जायगा, और उसके घाटपर छोटी-सी एक नाव बधी रहा करेगी।"

चारुने कहा—"घाट सफेद संगमरमरका होगा।"

अमलने कागज-पेन्सिल लेकर, रूल खींचकर, 'कम्पास'की मददसे बड़े आडम्बरके साथ बगीचेका एक नक्शा बना डाला।

इसके बाद दोनों मिलकर प्रतिदिन कल्पनाओंका सशोधन और परिवर्तन करने लगे, और इस तरह और-भी बीस-पचीस नये नक्शे तैयार हो गये।

'मैप' बन जानेपर खरचेका 'एस्टिमेट' बनने लगा। पहले तय हुआ था कि चारु अपने हाथ-खर्चके रुपयोमेसे धीरे-धीरे बगीचा बनवायेगी। भूपतिको तो घरमें कहाँ क्या हो रहा है कुछ पता ही नही रहता। चारुने सोचा, बगीचा बन जानेपर वहाँ पतिको निमन्त्रित करके वह उन्हे अचरजमें डाल देगी। भूपति सोचेगा कि जरूर अलादीनके चिरागकी सहायतासे जापान देशसे पूरा बगीचेका बगीचा उड़ा लाया गया है!

मगर 'एस्टिमेट' काफी किफायतसारीके साथ बनाया जानेपर भी चारुको वह पसन्द नही आया। उतने रुपये वह लायेगी कहाँसे? लिहाजा, अमलने फिर एक नक्शा बनाया, और उसमे बहुत-कुछ उलट-फेर किया गया।

अमलने कहा—"तो एक काम किया जाय, भाभी, झील अभी रहने दो, पीछे देखा जायगा। क्यों, ठीक है न?"

चारुने कहा—"नहीं नही, झील ही नही हुई तो फिर रहा क्या! हमारा नील-कमल तो उसीमे रहेगा!"

अमलने कहा—"तो फिर हरिनकी कुटियाकी टालीकी छत रहने दो, उसे ऐसे ही फूंससे छा देनेसे काम चल जायगा।"

इसपर चारुको गुस्सा आ गया, उसने कहा—"तो रहने दो, मुझे उस घरकी जरूरत नही।"

पहले मारीशससे लौंग, कर्नाटसे चन्दन और सिहलसे दालचीनीके पौधे मँगानेकी बात हुई थी, अमलने उसके बदले मानिकतल्लेके बगीचेसे मामूली देशी और विलायती पौधे मँगानेके लिए कहा, तो चारु मुँह फुलाकर बैठ गई, बोली—"तो रहने दो, मुझे बगीचा नहीं चाहिए।"

सभी जानते हैं कि 'एस्टिमेट' घटानेका यह तरीका नहीं है। किन्तु 'एस्टिमेट'के साथ-साथ कल्पनाओको भी रौंदना चारुके लिए असाध्य है; और अमल मुहसे चाहे जो भी कहे, उसे भी यह अच्छा नहीं लग सकता।

अमलने कहा—"तो, भाभी, तुम भाई साहबसे बगीचेके बारेमें कहती क्यों नही, वे जरूर रुपये दे देंगे।"

चारुने कहा—"नही, उनसे कहनेसे तो मजा ही जाता रहेगा। हम ही दोनों मिलकर बगीचा बनायेंगे। उनसे कहनेसे तो 'ईडन गार्डन' बनवा देंगे वे! तो फिर हमारे प्लैनका क्या होगा?"

विलायती आमड़ेके पेड़की छाया-तले बैठे हुए, चारु और अमल दोनों असाध्य संकल्पके कल्पना-सुखमे गोते लगा रहे थे। इतनेमें चारुकी भौजाई मन्दाकिनीने दुमंजिलेसे पुकारकर कहा—"इतनी अबेर हो गई, तुमलोग कर क्या रहे हो बगीचेमे?"

चारुने जवाब दिया—'पके आमड़े ढूंढ रही हूं।"

खटाईकी लालचिन मन्दाकिनीने कहा—"मिलें तो मेरे लिए भी लेती आना।"

चारु हँसने लगी, और अमल भी हँस दिया। उन दोनोंके संकल्पोंमें प्रधान आनन्द और गौरव यह था कि वे उन्ही दोनोंमें आबद्ध थे। मन्दाकिनीमें और चाहे जो भी गुण हों, पर कल्पना नही थी, वह इन सब बातोंमें रस कहाँसे लेती? वह इन दो सदस्योंकी सब तरहकी कमेटीसे बिलकुल न्यारी थी।

असाध्य भावी बगीचेका न तो एस्टिमेट घटा, और न कल्पनाने ही किसी अंशमें हार मानी। लिहाजा कुछ दिनों तक आमड़ेके पेड़के नीचे बार-बार कमेटी बैठती रही। बगीचेमें जहाँ झील खुदेगी, जहाँ हरिनकी कुटिया छवेगी, जहाँ पत्थरकी वेदी बनेगी, अमलने उन सब स्थानोंपर लाल निशान लगा दिये।

उस दिन, बगीचेमें आमड़ेके पेड़के नीचे किस तरहका चबूतरा बनाया जायगा, अमल उसके चारो तरफ कुदालसे निशान बना रहा था। इतनेमें चारु आकर पेड़की छायामे बैठ गई, और बोली—"अमल, तुम्हें अगर लिखना आता तो बहुत अच्छा होता!"

अमलने पूछा—क्यो अच्छा होता?"

चारुने कहा—"तो अपने इस बगीचेका वर्णन कराके तुमसे एक कहानी लिखवाती। यह झील, हरिनकी कुटिया, आमड़ेका पेड़, सब रहता उसमे। हम दोनोके सिवा और-कोई कुछ समझ ही नही पाता उसे, बड़ा मजा होता! एक बार लिखनेकी कोशिश करो न तुम, जरूर तुम लिख सकोगे।"

अमल—"अच्छा, अगर लिख सका तो तुम मुझे क्या दोगी?"

चारु—"क्या चाहते हो तुम?"

अमल—"मेरी मशहरीके चँदोएपर मै पेन्सिलसे फूल और लताएँ बना दूँगा, तुम्हें उसपर रेशमका काम कर देना होगा।"

चारु—"यह तो तुम्हारी ज्यादती है! मशहरीके चँदोएपर कही फूल-पत्तियोंका काम होता है!"

मशहरी जैसी चीजको सौन्दर्य-हीन कारागार बना रखनेके विरुद्ध अमलने बहुत-सी युक्तियाँ पेश की, और अन्तमे कहा—"दुनियामें पन्द्रह आना आदमी ऐसे हैं जिन्हे सौन्दर्यका रत्ती-भर भी ज्ञान नही। असुन्दरता उन्हें खटकती ही नहीं, यही प्रमाण है उसका।"

चारुने उसी वक्त मन-ही-मह यह बात मान ली, और यह जानकर वह खुश भी हुई कि उन-दोनोकी एकान्त कमेटी दुनियाके पन्द्रह-आना आदमियोसे अलग है। उसने कहा—"अच्छी बात है, मै मशहरीका चँदोआ बना दूंगी। तुम लिखो।"

अमलने रहस्यपूर्ण भावसे कहा—"तुम क्या समझती हो कि मै लिख ही नही सकता?"

चारु उत्तेजित हो उठी, बोली—"तो जरूर तुमने कुछ लिखा है! मुझे दिखाओगे नही?"

अमल—"आज रहने दो, भाभी।"

चारु—"नही, आज ही दिखाना होगा। तुम्हें मेरी सौगन्द है, जाओ, अपनी कापी ले आओ।"

असलमे, चारुको अपनी रचना सुनानेकी तीव्र व्यग्रता ही अमलको अब तक रोके हुए थी। उसे दुविधा थी कि कही चारुकी समझमे न आया तो,

उसे अच्छी न लगती तो ? और इस संकोचको वह दूर नही कर सकता था। आज, कापी लाकर, जरा सुर्ख होकर, जरा खाँस-खकारकर उसने पढना शुरू किया। और चारु पेड्के तनेके सहारे बैठकर घासपर पैर पसारे सुनने लगी। शीर्षक था, 'मेरी कापी।'

अमलने लिखा था—"हे मेरी शुभ्र कापी, कल्पनाओने अभी तक तुम्हारा स्पर्श नही किया। सूतिका-गृहमें भाग्यपुरुषके प्रवेश करनेके पहलेके शिशुके ललाटपटकी तरह तुम निर्मल हो, तुम रहस्यमयी हो! जिस दिन तुम्हारे अन्तिम पृष्ठकी अन्तिम पंक्तिमे उपसंहार लिखूंगा, वह दिन आज कहाँ है ? तुम्हारे ये शुभ्र शिशु-पत्र चिरकालके लिए मसी-चिह्नित उस समाप्तिकी आज स्वप्नमे भी कल्पना नही कर रहे।" इत्यादि।

चारु पेडकी छायामे बैठी ,स्तब्ध होकर सुन रही थी। पढना खतम होनेके वाद कुछ देर चुप रहकर वोली—"तुम लिख नहीं सकते, क्यो!"

उस दिन, उस पेड़के नीचे अमलने पहले-पहल साहित्यका मादक-रस पान किया। साकी थी नवीना, रसना भी नवीन थी, और तीसरे पहरकी सूर्यरश्मि दीर्घ छाया-पातसे रहस्यमयी होती जा रही थी।

चारुने कहा—"अमल, थोडेसे आमडे ले चलने होंगे, नहीं तो, मन्दाको कैफियत क्या दूँगी ?"

मूढ मन्दाके सामने ये सब साहित्यिक बातें कहनेकी प्रवृत्ति ही नहीं होती; इसलिए उसके लिए इन्हें आमडे तोडकर ले जाने पडे।

२

बगीचेका संकल्प उनके और-और अनेक संकल्पोकी तरह सीमा-हीन कल्पना-क्षेत्रमें कब कहाँ खो गया, अमल और चारु दोनोमेंसे किसीको कुछ मालूम ही नही हुआ।

और अब, अमलकी रचनाएँ ही उन दोनोंकी आलोचना और परामर्शका प्रधान विषय बन गई। अमल आकर कहता, "भाभी, एक बहुत ही अच्छा भाव दिमागमें आया है!"

चारु उत्साहित हो उठती, और कहती, "चलो, अपने दक्षिणके वरामदेमे, वही सुनूंगी ; यहाँ अभी मन्दा पान लगाने आयेगी।"

चारु कश्मीरी वरामदेमे एक पुरानी बेंतकी आरामकुर्सीपर बैठ जाती, और अमल रेलिंगके नीचेवाले ऊँचे हिस्सेपर बैठकर पैर फैला देता।

अमलके लिखनेके विषय अकसर सुनिर्दिष्ट नहीं होते, लिहाजा कोई वात स्पष्ट करके कहना उसके लिए कठिन था। अनेक विषयोकी खिचड़ी पकाकर वह जो भी कुछ कहता, उसे साफ-साफ समझ लेना किसीके भी बूतेकी वात नहीं। अमल खुद ही वार-वार कहा करता रहता, "भाभी, मै तुम्हें अच्छी तरह समझा नहीं सकता।"

चारु कहती, "नही, मै वहुत-कुछ समझ रही हू। तुम इसे पूरा लिख डालो, देर न करो।"

चारु कुछ समझकर और कुछ बिना-समझे, वहुत-कुछ कल्पना करके और बहुत-कुछ अमलके व्यक्त करनेके आवेगसे उत्तेजित होकर मन-ही-मन न-जाने ऐसी कौनसी चीज बनाकर खडी कर लेती कि उससे उसे सुख मिलता, आराम मिलता और मारे आग्रहके वह अधीर हो उठती।

चारु उसी दिन शामको ही पूछ बैठती, "कहाँ तक लिख लिया ?"

अमल कहता, "इतनी जल्दी कही लिखा जा सकता है !"

चारु दूसरे दिन सवेरे फिर जरा-कुछ नाराजीके स्वरमें पूछती, "तुमने उसे पूरा लिखा नहीं अभी ?"

अमल कहता, "ठहरो, और जरा सोच लेने दो।"

चारु नाराज होकर कहती, "तो रहने दो।"

शामको वही गुस्सा इकट्ठा हो-होकर जब वातचीत वन्द करानेकी नौवत ला देता तव अमल रूमाल निकालनेके वहाने जेबमेंसे लिखे-हुए कागजका कुछ हिस्सा निकालता। उसी क्षण चारुका मौन भंग हो जाता, और कह उठती, "वो क्या है, लिख तो लिया है ! मुझसे झूठ ! नहीं दिखाओगे ?"

अमल कहता, "अभी खतम नहीं हुआ। और थोडा-सा लिखके पीछे सुनाऊंगा तुम्हें।"

चारु कहती, "नहीं, अभी सुनाना होगा तुम्हें !"

अमल 'अभी सुनाने'के लिए ही व्यस्थ रहता , पर चारुसे कुछ देर तक छीना-झपटी कराये बिना वह सुनाना नहीं चाहता। थोड़ी छीना-झपटीके बाद अमल कागज हाथमें लेकर पन्ने ठीक कर लेता, और पेन्सिलसे दो-एक संशोधन करता रहता ; और तब तक चारु पुलकित कुतूहलसे, जलके भारसे झुके-हुए बादलकी तरह, उन कागजोंपर झुकी ही रहती।

अमल दो-चार पैराग्राफ जब जितना लिखता उतना ही उसे हाल-की-हाल चारुको सुना देना पड़ता। बिना लिखे-हुए अवशिष्ट अंशका आलोचना और कल्पनाके द्वारा मन्थन चलता रहता।

अब तक ये दोनों तरुण-हृदय आकाश-कुसुमके चयनमें ही उलझे हुए थे ; किन्तु अब काव्य-कुसुमकी खेती शुरू हो जानेसे और-सब बातें भूल गये।

एक दिन तीसरे पहर अमल कालेजसे लौटा, तो उसकी जेब कुछ ज्यादा भारी-सी मालूम हुई। अमल जब घरमें घुसा, तब चारुने अन्त पुरकी खिड़कीसे उसकी जेबकी पूर्णता देख ली।

अमल और-और दिन कालेजसे लौटकर घरके भीतर पहुंचनेमें देर न करता था ; पर आज वह अपनी भरी जेब लिये बाहरके कमरेमें ही रह गया, जल्दी भीतर जानेका नाम तक न लिया।

चारुने अन्त पुरके सीमान्त तक आकर कई बार चूड़ियाँ बजाई, पर किसीने सुना ही नहीं। अन्तमें वह कुछ नाराज होकर अपने बरामदेमें जा बैठी , और मन्मथ दत्तकी एक किताब हाथमें लेकर पढ़नेकी कोशिश करने लगी।

मन्मथ दत्त नवीन लेखक है। उसकी लेखन-शैली बहुत-कुछ अमलके ढंगकी है , और इसीलिए अमल कभी उसकी प्रशंसा नहीं करता। बल्कि वह कभी-कभी चारुके सामने उसकी रचना विकृत उच्चारणसे पढ़कर मजाक उड़ाया करता , और चारु उसके हाथसे किताब छीनकर अवज्ञाके साथ दूर फेंक दिया करती।

किन्तु आज, जब उसने अमलके पैरोंकी आहट सुनी, तो उसी मन्मथ

दत्तका 'कलकंठ' काव्य उसने अपने मुँहके सामने रखकर गहरी दिलचस्पीके साथ पढना शुरु कर दिया।

अमल बरामदेमे आया, किन्तु चारुने उसकी तरफ जरा भी ध्यान न दिया।

अमल बोला—"भाभी, क्या पढ रही हो ?"

चारुको निरुत्तर देख अमल उसकी चौकीके पीछे आकर खडा हो गया और पुस्तकका नाम पढकर बोला—"अच्छा! मन्मथ दत्तका 'गलगण्ड'"

चारुने कहा—"ओ ह्, परेशान न करो, पढने दो मुझे!"

पीठके पास खडा-खडा अमल व्यंगके स्वरमे पढने लगा—"मै तृण हू,—क्षुद्र तृण! भाई रक्ताम्बर राज-वेशधारी अशोक, मै मात्र एक तृण हू। मेरे फूल नही, मेरे छाया नही, अपना मस्तक मै आकाशमे नही उठा सकता, वसन्तकी कोयल मेरा आश्रय लेकर 'कुहू-कुहू' स्वरसे जगतको उन्मत्त नही करती,—फिर भी, भाई अशोक, तुम अपनी उस पुष्पित उच्च शाखासे मेरी उपेक्षा न करो। तुम्हारे पाँवों पडता हू, मै तृण हूं, तो भी मुझे तुम तुच्छ न समझो!"

अमलने इतना अंश पुस्तकसे पढा, और फिर वह अपनी तरफसे बना-बनाकर व्यंगकी ध्वनिमे कहने लगा—"मै केलोकी गहर हूं, भाई कद्दू! गृह-छप्पर-विहारी भाई कद्दू, मै नितान्त ही कच्चे केलेकी गहर हूं!"

चारु कौतूहलके मारे गुस्सा न हो सकी, हँसके उठ बैठी, और किताब फेककर बोली—"तुम बड़े ईर्षालु हो, अपनी रचनाके सिवा और-किसीकी कोई भी चीज तुम्हें पसन्द नही आती।'

अमलने कहा—"लेकिन तुम्हारी तो अपूर्व उदारता है! कही तृण भी मिल जाय तो तुम उसे तुरत निगल जाना चाहती हो!"

चारु—"अच्छा महाशयजी, मजाक करनेकी जरुरत नही,—जेबमे क्या है, सो जल्दी निकालिये ?"

अमल—"अच्छा, तुम्हारा क्या अन्दाज है ?"

बहुत देर तक चारुको तंग करके अमलने जेबमें से 'सरोरुह' नामक प्रसिद्ध मासिकपत्र निकाला।

चारुने समझा कि जरूर इसमें अमलकी वह 'मेरी कापी' नामक रचना प्रकाशित हुई होगी।

उसे देखकर वह चुप रही। अमलने सोचा था कि भाभी बहुत खुश होगी। मगर खुशीका विशेष कोई लक्षण न देखकर उसने कहा—"समझीं भाभी, 'सरोरुह'मे कोई ऐरू-गैरू लेख नहीं निकलते !"

अमल कुछ ज्यादा कह गया। असलमें, किसी प्रकार चलने-लायक लेख हाथ पडनेपर सम्पादक उसे छापे बिना नही छोड़ते। पर अमलने चारुको समझा दिया कि सम्पादक बहुत ही कडे आदमी हैं, एक सौ रचनाओंमेसे मुश्किलसे एक प्रकाशन-योग्य समझकर छापते हैं।

सुनकर चारु खुश होनेकी कोशिश करने लगी, पर खुश न हो सकी। किस वजहसे उसके मनमें चोट पहुँची, इसे उसने समझ देखनेकी कोशिश की; पर कोई संगत कारण न निकाल सकी।

अमलकी रचना असलमें अमल और चारु इन्हीं दोनोंकी सम्पत्ति है। अमल लेखक है और चारु पाठिका। इस गोपनतामे ही उसका प्रधान रस है। उनकी रचनाओंको सभी-कोई पढे और बहुतसे लोग उसकी प्रशंसा करें, इसकी वेदना चारुको क्यों इतना दुःख दे रही थी, सो वह अच्छी तरह न समझ सकी।

किन्तु एक पाठकसे लेखककी आकांक्षा ज्यादा दिनों तक नहीं मिट सकती। अमलने अपनी रचनाएँ, छपवाना शुरू कर दिया; और प्रशंसा भी प्राप्त की।

बीच-बीचमें भक्तोंकी चिट्ठियाँ भी आने लगीं। अमल उन्हें अपनी भाभीको दिखाया करता। चारु उससे खुश भी होती, और दुःखित भी। अब अमलको लिखनेमें प्रवृत्त होनेके लिए एकमात्र चारुके ही उत्साह और उत्तेजनकी आवश्यकता नही रही। अमलको बीच-बीचमें कभी-कदा बिना नाम-धामकी रमणियोकी चिट्ठियाँ भी मिलने लगी। उनके लिए चारु उसका मजाक उड़ाती, पर आराम नहीं पाती। सहसा उनकी कमेटीके बन्द द्वारको खोलकर देशकी पाठक-मण्डली उन दोनोंके बीच आ खड़ी हुई।

भूपतिने एक दिन फुरसत मिलनेपर बातके सिलसिलेमे कहा—"अपना अमल इतना अच्छा लिख लेता है, सो मुझे मालूम ही न था !"

भूपतिकी प्रशंसासे चारु खुश हुई। अमल भूपतिका आश्रित है; पर अन्य आश्रितोसे उसमें पार्थक्य है – यह बात पतिके समझ लेनेसे चारुने मानो गर्वका अनुभव किया। उसके मनका भाव यह था कि अमलको क्यो मे इतना स्नेह और आदर करती हूं, सो इतने दिनो बाद तुमलोग समझे। और मै बहुत दिन पहले ही अमलको समझ गई थी। अमल किसीके लिए भी अवज्ञाका पात्र नही। चारुने पूछा—"तुमने उसके लेख पढे हैं ?"

भूपतिने कहा—"हॉ, नही, ठीक पढे तो नहीं, समय ही नही मिलता, पर अपना निशिकान्त पढके खूब तारीफ कर रहा था। वह साहित्यिक लेख अच्छा समझ लेता है।"

चारु एकान्त मनसे यह चाहती थी कि भूपतिके मनमे अमलके प्रति एक सम्मानका भाव जाग उठे।

२

उमापति भूपतिको अखबारके ग्राहकोको सालमे कई तरहके उपहार देनेकी बात समझा रहा था, पर भूपतिकी समझमे यह किसी भी तरह नही आ रहा था कि उपहारसे किस तरह नुकसानसे बचकर लाभ हो सकता है।

चारु एक बार कमरेमें घुसी; और उमापतिको देखकर लौट गई। फिर कुछ देर बाद घूम-फिरकर कमरेमे आई, तो उसने देखा कि दोनों जने किसी हिसाबके बारेमे बहस कर रहे हैं।

उमापति चारुका अधैर्य देखकर किसी बहानेसे बाहर चला गया, और भूपति हिसाबमे सर खपाने लगे।

चारुने कमरेके भीतर आकर कहा—"अभी तक शायद तुम्हारा काम खतम नही हुआ। दिन-रात उसी एक अखबारको लेकर कैसे तुम्हारा समय कटता है, मै यही सोचती हूं !"

भूपतिने हिसाव हटाकर रख दिया, और जरा मुसकरा दिये। मन ही मन सोचने लगे, 'वास्तवमें चारुकी तरफ ध्यान देनेका मुझे वक्त ही नही मिलता, यह वडा अन्याय है मेरा। उस वेचारीके पास समय वितानेका कुछ जरिया ही नही।'

भूपतिने स्नेह-भरे स्वरमें कहा—"आज तुम्हारी पढाई वन्द है मालूम होता है। मास्टर साहव शायद भागे हुए हैं? तुम्हारी पाठशालामें सव उलटे नियम हैं; – छात्रा पोथी-पत्रा लेकर तैयार है, मास्टरका पता नही! आजकल अमल तुम्हें नियमितरूपसे नही पढाता क्या?"

चारुने कहा—"मुझे पढाकर अमलका समय नष्ट करना क्या उचित है? अमलको क्या तुमने एक मामूली प्राइवेट-ट्यूटर समझ रखा है?"

भूपतिने चारुकी कमर पकड़कर अपनी ओर खीचते हुए कहा—'यह क्या मामूली प्राइवेट-ट्यूटरी हो गई? तुम जैसी भाभीको अगर मै पढा सकता, तो—"

चारु बोली—"ओ-हो! वस रहने दो, तुम अव कुछ न कहो! पति, होनेपर ही यह हाल है, तो और कुछ—"

भूपतिको जरा-कुछ चोट पहुँची, बोले—"अच्छा, कलसे मै तुम्हें जरूर पढाऊँगा। अपनी कितावें तो ले आओ जरा, क्या पढती हो, जरा देख लूं?"

चारु—"रहने भी दो, वहुत हो गया, तुम्हे अव पढानेकी जरूरत नहीं। कुछ देरके लिए अपने अखवारका हिसाव जरा रहने दोगे? अभी तुम और किसी तरफ ध्यान दे सकोगे या नही, सो वताओ?"

भूपति—"जरूर जरूर! इस वक्त तुम मेरे मनको जिस तरफ घुमाना चाहो, घुमा सकती हो।"

चारु—"अच्छी वात है, तो अमलका यह लेख पढ देखो, कैसा अच्छा लिखा है! सम्पादकने अमलको लिखा है कि „इस लेखको पढकर नवगोपाल वावूने उसे भारतका रस्किन वताया है!"

सुनकर भूपतिने कुछ संकुचित-भावसे अखवार हाथमे ले लिया। खोलकर देखा, लेखका नाम है 'असाढ़का चाँद'।

पिछले दो हफ्तेसे भूपति भारत-सरकारके बजटकी समालोचना करनेके लिए बड़े-बड़े आँकड़े बना रहे थे। उसके अङ्क बहुत-पैरवाले कीड़ोंकी तरह उनके दिमागके अनेक छेदोंमे घूम-फिर रहे थे। ऐसे समयमें सहसा देशी भाषामें लिखे हुए 'आषाढका चाँद' लेख आद्योपान्त पढनेके लिए उसका मन तैयार न था। और रचना भी छोटी न थी।

रचनाका प्रारम्भ इस तरह था—"आषाढका चाँद, क्यों तू सारी रात बादलोमें इस तरह छुपा-छुपा फिरता है! मानो स्वर्गलोकसे तू कुछ चुरा लाया है, मानो अपना कलंक ढकनेके लिए तुझे कहीं स्थान न मिल रहा हो! फागुनके महीनेमे जब आकाशके किसी कोनेमें मुट्ठी-भर बादल नहीं थे, तब संसारकी आँखोके सामने तू निर्लज्जकी तरह खुले आकाशमे अपनेको प्रकट किये हुए था, और आज, आज तेरी वही बिखरी-हुई हँसी बच्चेके स्वप्नकी तरह, प्रियाकी स्मृतिकी तरह, सुरेश्वरी शचीके अलक-विलम्बित मुक्ताहारकी तरह—" इत्यादि।

भूपतिने सिर खुजाते हुए कहा—"अच्छा लिखा है! पर मुझे क्यों देती हो? यह सब कवित्वकी बातें मै क्या समझूं!"

चारुने संकुचित होकर भूपतिके हाथसे पत्रिका छीन ली, बोली—"तो तुम क्या समझते हो?"

भूपतिने कहा—"मैं इस दुनियाका आदमी हूँ, ज्यादासे ज्यादा मै आदमीको समझता हूँ।"

चारुने कहा—"आदमीकी बात क्या साहित्यमें नहीं लिखी रहती?"

"गलत लिखी रहती है। इसके सिवा, जब कि आदमी सशरीर मौजूद है तो बनावटी बातोंमे उसे ढूढनेसे क्या फायदा?" इतना कहकर भूपति चारुलताकी ठोड़ी पकड़कर कहने लगे—"यही, जैसे मै तुम्हें समझता हूं, इसके लिए क्या 'मेघनाद-वध' या 'चण्डीदास' पढनेकी जरूरत है?"

भूपतिको इस बातका अभिमान था कि वे काव्य नहीं समझते। फिर भी अमलकी रचनापर, अच्छी तरह बगैर पढे ही, उनकी श्रद्धा थी। भूपति सोचते कि कहनेकी बात कुछ नहीं, फिर भी बना-बनाकर इतनी अनर्गल

बातें कह डालना, यह तो मुझसे सिर धुन डालनेपर भी न कही जाती। अमलके भीतर इतनी शक्ति थी, सो कौन जानता था ?

भूपति अपनी रसज्ञताको अस्वीकार करते थे, किन्तु साहित्यके प्रति उनकी तरफसे कंजूसी नही थी। कोई गरीब लेखक किताब छपानेके लिए उनसे सहायता माँगता, तो वे उसी वक्त और उदारताके साथ रुपये दे देते, और खास तौरसे सिर्फ इतना कह दे कि 'मुझे समर्पण न की जाय।' देशके छोटे-बडे सभी साप्ताहिक और मासिक पत्र, प्रसिद्ध अप्रसिद्ध, पाठ्य अपाठ्य सभी तरहकी किताब वे खरीद लिया करते। और जिक्र छोड़नेपर कह दिया करते, "एक तो मै पढ़ता नहीं, उसपर अगर खरीदूं भी नही तो पाप भी लगेगा और प्रायश्चित्त भी न होगा।" वे खुद पढते नही थे, इसीसे बुरी किताबोंके प्रति उनका रत्ती-भर भी विद्वेष नहीं था। यही वजह है कि उनकी लाइब्रेरी देशी पुस्तकोंसे भरी पडी थी।

अमल भूपतिको अंगरेजी प्रूफ देखनेमे सहायता करता था। किसी एक कापीकी दुर्बोध्य लिपि दिखानेके लिए वह कॉपियोका एक बंडल लेकर उनके कमरेमे घुसा।

भूपतिने हँसते हुए कहा—"अमल, तुम 'आषाढके चाँद' और 'भादोके पके ताड'पर जितना चाहो लिखो, उसमे मुझे कोई आपत्ति नही, मै किसीकी स्वाधीनतापर हस्तक्षेप नही करना चाहता। पर मेरी स्वाधीनतापर क्यो हस्तक्षेप किया जाता है ? तुम्हारी भाभी मुझे तुम्हारी रचनाएँ बगैर पढाये नही छोड़ती, यह कैसा अत्याचार है !"

अमलने हँसकर कहा—"यह क्या, भाभी, मेरी रचनाओंसे तुम भाई साहबपर जुल्म करनेकी तरकीब निकाल लोगी, ऐसा जानता तो मै कुछ लिखता ही नही।"

साहित्य-रससे विमुख भूपतिके आगे लाकर उसकी अत्यन्त दर्द-भरी रचनाओका अनादर करानेसे अमल मन-ही-मन चारुपर नाराज ही हुआ, और चारु भी उसी वक्त इस बातको समझ जानेसे व्यथित हुई। और

बातको दूसरी तरफ घुमानेके लिए भूपतिसे बोली—"तुम अपने भइयाका -ब्याह तो करा दो देखूं, तब फिर लेख-वेखका उपद्रव नही सहना पडेगा !"

भूपतिने कहा—"आजकलके लड़के हम जैसे बेवकूफ नही हैं ! उनका जितना कवित्व है, सब लेखोमें ही है, – काममें वे खूब सयाने हैं ! भला, आज तक अपने देवरको तुम ब्याहके लिए भी राजी करा सकी ?"

चारुके चले जानेपर भूपतिने अमलसे कहा—"अमल, मुझे अपने इस अखबारके झगडेमे रहने दो। चारु बेचारी बडी अकेली-सी रहती है। कोई काम-धन्धा नहीं, बीच-बीचमे मेरे पास आती है और झाँक-झूँककर चली जाती है। क्या करूं बताओ ? तुम उसे जरा पढने-लिखनेमें लगाये रख सको तो अच्छा हो। बीच-बीचमे उसे अंगरेजी काव्योंसे कुछ अनुवाद करके सुनाया करो, तो उपकार भी हो और अच्छा भी लगे। चारुमे साहित्यिक रुचि तो काफी है।"

अमल बोला—"सो तो ठीक है। भाभी अगर और-जरा पढ-लिख ले, तो मेरा विश्वास है कि वे खुद बहुत अच्छा लिखने लगें।"

भूपतिने हँसकर कहा—"इतनी आशा मै नही करता। पर इतना जरूर है कि चारु आजकलकी साहित्यिक रचनाओकी अच्छाई-बुराई मुझसे ज्यादा समझती है।"

अमल—"उनमे कल्पना-शक्ति काफी है। खासकर स्त्रियोमें यह बात कम पाई जाती है।"

भूपति—"पुरुषोमें भी कम पाई जाती है, – इसका सबूत मै हूँ ! अच्छा, तुम अगर अपनी भाभीको कुछ बना सको, तो मै तुम्हें इनाम दूँगा।"

अमल—"क्या दोगे, बताओ न, भाई साहब ?"

भूपति—"तुम्हारी भाभीके लिए एक देवरानी ढूंढ लाऊगा कहींसे।"

अमल—"फिर मुझे उसे बनानेमें लग जाना पडेगा ! सारी जिन्दगी क्या बनाने-बनानेमे ही बिता दूंगा !"

दोनों भाई आधुनिक ठहरे , बात करनेमे सकुचाते नही।

४

पाठक-समाजमे नाम पैदा करके अमलने अब अपना मस्तक पहलेसे बहुत कुछ ऊंचा कर लिया है। पहले वह स्कूलके लड़केकी तरह रहा करता था, अब मानो वह समाजका गण्य-मान्य आदमी जैसा हो गया है। बीच-बीचमे साहित्य-सभामें वह निबन्ध पढा करता है। सम्पादक और सम्पादकके दूत उसके पास आया करते हैं, और उसे निमन्त्रित करके खिलाते-पिलाते भी हैं। नाना सभाओंके सदस्य और सभापति बनानेके लिए लोग उससे अनुरोध भी किया करते हैं। घरके नौकर-चाकर और आत्मीय-स्वजनोकी दृष्टिमें भी उसका सम्मान पहलेसे बहुत-कुछ ऊंचा हो गया है।

किन्तु मन्दाकिनीने अब तक उसे कोई खास आदमी नही समझा। अमल और चारुके हास्यालाप और आलोचनाको महज लडकपन समझकर, उसकी उपेक्षा करके, वह पान लगाती और घरका काम-काज किया करती थी। साथ ही अपनेको वह उनलोगोंसे श्रेष्ठ और गृहस्थीके लिए अधिक आवश्यक समझती थी।

अमलके पान खानेकी कोई हद न थी। मन्दाकिनीपर पान लगानेका भार होनेसे वह पानोकी इस फिजूल-खर्चीसे नाखुश रहती थी। चारु और अमल षडयन्त्र करके मन्दाका पानोंका भंडार अकसर लूट लिया करते थे, और अन्तमे यह उनके मनोविनोदका एक जरिया हो गया। मगर इन शौकीन लुटेरोका लूट-खसोटका मजाक मन्दाके लिए मनोरंजक न था।

असलमें बात यह है कि एक आश्रित दूसरे आश्रितको प्रसन्नदृष्टिसे नहीं देख सकता। अमलके लिए मन्दाको जितना काम काज करना पडता, उससे मानो वह अपनेको कुछ अपमानित-सी समझती। चारु अमलका पक्ष करती थी, इसलिए उससे मुंह खोलकर कुछ कहते नही बनता था, पर अमलकी लापरवाही करनेकी कोशिश वह हमेशा किया ही करती थी। और मौका मिलते ही दास-दासियोके आगे भी गुप्तरूपसे अमलकी बदनामी करनेसे नही चूकती। और वे भी उसमे भाग लिया करते थे।

किन्तु जब अमलका अभ्युत्थान शुरू हुआ, तो मन्दा चौंकी। अमल अब वह अमल नहीं रहा ! अब उसकी संकुचित नम्रता बिलकुल ही जाती रही, और दूसरोंकी अवज्ञा करनेका अधिकार भी मानो उसीके हाथ आ गया। संसारमें प्रतिष्ठा प्राप्त करके जो पुरुष बिना सशयके नि संकोचभावसे अपनेको जाहिर कर सकता है, और जिसने एक निश्चित अधिकार प्राप्त कर लिया है, वह समर्थ पुरुष सहज ही नारीकी दृष्टि आकर्षित कर सकता है। मन्दाने जब देखा कि अमल चारों तरफसे श्रद्धा पा रहा है, तब उसने भी अमलके ऊंचे मस्तककी ओर मुंह उठाकर देखा। अमलके तरुण चेहरेपर आई-हुई नव-गौरवकी गर्वोज्ज्वल दीप्तिने मन्दाकी आँखोंमे एक तरहका मोह पैदा कर दिया, और तब अमलको मानो उसने नई तरहसे देखा।

अब किसीको पान चुरानेकी जरूरत नही पड़ती। अमलके ख्याति-लाभसे चारुको इतना-और नुकसान हुआ कि उन दोनोका षड्यन्त्रका कौतुक-बन्धन विच्छिन्न हो गया। पान अब अमलके आगे अपने-आप ही पहुचने लगे, कभी कोई कमी नही पड़ती।

इसके सिवा, उन दोनोंके गठित दलमें जो मन्दाकिनीको नाना कौशलोंसे दूर रखनेका आनन्द था, उसके भी नष्ट होनेकी नौबत आ पहुंची। मन्दाको अब अलग रखना कठिन हो गया। अमल सिर्फ चारुको ही अपनी एकमात्र साथिन और समझदार समझे, यह बात मन्दाको अच्छी नहीं लगने लगी। इसके पहले, उन दोनोकी तरफसे की जानेवाली उपेक्षाका अब वह मय व्याजके बदला लेना चाहती है। लिहाजा, अमल और चारुकी भेंट-मुलाकात होते ही अब वह बीचमें अपनी छाया डालकर 'ग्रहण' लगा देती है। सहसा मन्दाके इस परिवर्तनसे चारु और अमलको हास्य-परिहास करनेका मौका मिलना भी दुश्वार हो गया।

मन्दाकिनीका यह अनाहूत प्रवेश चारुको जितना अरुचिकर मालूम हुआ अमलको शायद उतना न भी मालूम हुआ हो। विमुख रमणीका मन क्रमश· उसकी तरफ झुक रहा है यह जानकर भीतर-ही-भीतर वह एक तरहका आग्रह अनुभव करने लगा।

परन्तु चारु जब दूरसे मन्दाको देखकर तीव्र मृदुस्वरसे कहती, "वो आ रही है !" तब अमल भी कह देता, "आ गई क्या, परेशान कर डाला !" संसारके और-सबोके प्रति असहिष्णुता प्रकट करना इनका एक दस्तूर-सा था, अमल उसे अचानक कैसे छोड़ देता ! अन्तमे मन्दा जब पास आ जाती, तब मानो जबरदस्ती सौजन्य दिखानेके लिए वह कहता, "क्या खबर है, मन्दा भाभी ? आज अपने पानदानमे चोरी-डकैतीके कोई लक्षण देखे ?"

मन्दा कहती, "जब कि चाहते ही पा जाते हो, लालाजी, तो चुरानेकी क्या जरूरत ?"

अमल कहता, "माँगकर पानेकी अपेक्षा उसमे आनन्द जो ज्यादा है !"

मन्दा कहती, "तुमलोग क्या पढ रहे थे, पढो न ! रुक क्यो गये ? सुननेमें मुझे अच्छा लगता है ।"

इसके पहले मन्दाको पाठानुरागके लिए ख्याति प्राप्त करनेकी गरज कतई नही थी, किन्तु "कालोहि बलवत्तर !"

चारु नही चाहती कि आरसिका मन्दाके सामने अमल कुछ पढे, किन्तु अमलकी इच्छा रहती कि मन्दा भी उसकी रचना सुने ।

चारु कहती, "अमलने 'कमलाकान्तके दप्तर' की समालोचना लिखी है, सो क्या तुम्हारी समझमे—"

मन्दा कहती, "अरे मै मूरख ही सही, तो क्या बिलकुल समझ ही नहीं सकती !"

इसपर और-एक दिनकी बात अमलको याद आ गई । चारु और मन्दा दोनो ताश खेल रही थी । अमल अपनी रचना हाथमे लिये-हुए खेल-सभामे दाखिल हुआ । चारुको अपनी रचना सुनानेके लिए वह अधीर हो रहा था । खेल खतम न होते देख वह मन-ही-मन गुस्सा होने लगा । अन्तमे उसने कहा—"तो तुमलोग खेलती रहो, भाभी, मै अखिल-बाबूको जाकर अपनी रचना सुना आऊँ ।"

चारुने अमलका दुपट्टा पकड़ लिया, बोली—"उफ्, बैठो न जरा, कहाँ जाते हो ?" और झटपट हारकर उसने खेल खतम कर दिया ।

मन्दाने कहा—"तुम पढना शुरू करोगे शायद, तो मै उठू।"

चारुने शराफत दिखाकर कहा—"क्यो, तुम भी सुनो न, भाभी!"

मन्दाने कहा—"नही बहन, मै तुमलोगोंका पढना खाक-पत्थर कुछ समझती ही नहीं, मुझे तो नीद आने लगती है!" और वह असमयमें खेल खतम हो जानेसे दोनोंपर बहुत ही नाराज होकर उठ गई।

वही मन्दा आज 'कमलाकान्त' की समालोचना सुननेके लिए उत्सुक है!

अमलने कहा—"यह तो बडी खुशीकी बात है भाभी, तुम सुनोगी, यह तो मेरा सौभाग्य है!"—इतना कहकर उसने पन्ने उलटकर पढनेकी तैयारी की। रचनाके आरम्भमे ही उसने काफी रस उँडेला था, उतना हिस्सा छोड देनेको उसका जी नही चाहा।

चारु जल्दीसे कह उठी—"लालाजी, तुमने तो कहा था कि जाह्नवी लाइब्रेरीसे कुछ पुराने मासिकपत्र ला दोगे?"

अमलने कहा—"आज नहीं।"

चारु बोली—"आज ही तो! खूब रहे, भूल गये, क्यो?"

अमलने कहा—"भूल क्यो जाऊगा? तुम्हींने तो कहा था—"

चारुने कहा—"अच्छा-अच्छा, मत लाओ! तुमलोग पढो, मै जाती हू पारसको लाइब्रेरी भेज दू जाकर।"—कहकर चारु उठ गई।

अमलको विपत्तिकी आशका हुई। मन्दा मन-ही-मन समझ गई, और दूसरे ही क्षण चारुके प्रति उसका मन विषाक्त हो उठा। चारुके चले जानेपर अमल दुविधामे पड गया कि वह उठे या नही। इतनेमे मन्दाने जरा-कुछ हँसकर कहा—"जाओ भाई, रूठी भाभीको मनाओ! चारु गुस्सा हो गई है। मुझे लेख सुनाकर फजूल परेशानीमे पडोगे!"

इसके बाद अमलके लिए उठना बहुत ही मुश्किल हो गया। अमलने चारुसे जरा रुष्ट होकर मन्दासे कहा—"क्यो, परेशानी काहेकी!" और पढना शुरू कर दिया।

मन्दाने दोनों हाथोंसे उसकी कापी ढककर कहा—"जरूरत नही, भइया, मत पढो।" इतना कहकर, मानो वह आँसू रोकती हुई अन्यत्र चली गई।

५

चारु न्योता खाने गई थी। मन्दाकिनी घरमे बैठी जूडा बाँध रही थी। इतनेमे 'भाभी' कहता-हुआ अमल भीतर चला आया। मन्दाकिनी निश्चित जानती थी कि चारुके न्योतेमे जानेकी बात अमल जानता ही होगा, वह हँसकर बोली—"अहा, अमल-बाबू, किसकी खोजमें आये थे, और किससे भेट हो गई! तुम्हारी तकदीर ही ऐसी है!"

अमलने कहा—"गधेके लिए जैसी घास बाईं तरफकी, वैसी दाहनी तरफकी, दोनो समान आदरणीय है!" और वही बैठ गया। फिर थोड़ी देर बाद बोला—"मन्दा-भाभी, तुम अपने देशकी कोई कहानी कहो, मै सुनूगा।"

अमल लिखनेका विषय चुननेके लिए सबकी सब बातें दिलचस्पीके साथ सुना करता है। इसलिए मन्दाकी अब वह पहलेकी तरह उपेक्षा नही करता। मन्दाका मनस्तत्त्व और उसका इतिहास अब उसके लिए दिलचस्पीकी चीज है। कहाँ उसकी जन्मभूमि है, कैसे उसका जीवन बीता है, कब उसका ब्याह हुआ, इत्यादि सभी बातें वह ढूंढ ढूढकर पूछने लगा। मन्दाके क्षुद्र जीवन-वृत्तान्तके सम्बन्धमे उसे इतना कुतूहल क्यो है, यह बात उसने प्रकट नही की; और मन्दा भी अपने आनन्दमे अपनी सब बातें कहती ही चली जाने लगी। बीच-बीचमे वह कहती भी जाती कि 'क्या बक रही हूं, कोई ठीक नही!' फिर भी रुकना नही चाहती।

अमल भी उसे उत्साह देते हुए कहता, "नही, मुझे अच्छा लग रहा है, तुम कहती जाओ।"

मन्दाके पिताके यहाँ एक गुमश्ता था, वह अपनी दूसरी स्त्रीके साथ झगडा करके किसी-किसी दिन रूठकर अनशन-व्रत ग्रहण किया करता था। अन्तमे भूखके मारे तंग आकर एक दिन वह मन्दाके घर किस तरह छिपकर खाने आया और अचानक स्त्रीने उसे कैसे पकड़ लिया,—यह किस्सा चल रहा था; और अमल दिलचस्पीके साथ सुनते सुनते सकौतुक हँस रहा था। इतनेमें कमरेमें चारु आ गई।

कहानीका सिलसिला टूट गया। चारुके आगमनसे सहसा एक जमी हुई सभा भंग हो गई, और चारुको यह स्पष्ट भास गया।

अमलने पूछा—"भाभी, इतनी जल्दी लौट आईं जो?"

चारुने कहा—"हूं! बहुत जल्दी लौट आई!" इतना कहकर वह जा ही रही थी कि अमल बोल उठा—"अच्छा ही किया, बचा लिया मुझे। मैंने तो सोचा कि न-जाने कब लौटोगी! मन्मथ दत्तकी 'शामकी चिड़िया' नई पुस्तक निकली है, तुम्हे सुनानेके लिए लाया हूं।"

चारुने कहा—"अभी रहने दो, मुझे काम है।"

अमल बोला—"काम हो तो मुझे हुक्म दो, मै किये देता हू।"

चारु जानती थी कि अमल आज मन्मथकी नई किताब खरीद लायेगा और उसे सुनायेगा। अमलके मनमे ईर्षा पैदा करनेके लिए उसने सोच रखा था कि वह उस किताबकी खूब प्रशंसा करती जायगी और अमल उस किताबको विकृत करके पढकर उसका मजाक उडाता जायगा। इन्हीं सब बातोंकी कल्पना करके चारु अधैर्यवश, निमन्त्रकारियोंके अनुनय-विनयकी परवाह न कर, अस्वस्थताका बहाना करके असमयमे घर लौट आई थी। किन्तु घर आकर उसे ऐसा मालूम होने लगा कि वहाँ बडे मजेमे थी, वहाँसे चला आना अन्याय हुआ। सोचने लगी, 'मन्दा भी तो कुछ कम बेहया नहीं! एक घरमे अकेली बैठी अमलके साथ दाँत निकालकर हँस रही है! लोग देखेगे तो क्या कहेगे?' परन्तु इस बातपर मन्दाको फटकारना चारुके लिए बहुत कठिन था। कारण, मन्दा भी अगर ठीक वैसा ही दृष्टान्त देकर जवाब दे तो? किन्तु वह दूसरी बात है, और यह दूसरी। वह अमलको लिखनेमें उत्साह देती है, अमलके साथ साहित्यिक आलोचना करती है, किन्तु मन्दाका तो यह उद्देश्य हो ही नही सकता। उसने सोचा, 'मन्दा नि सन्देह इस सरल-हृदय युवकको मुग्ध करनेके लिए जाल बिछा रही है।' और इस भयानक विपत्तिसे अमलकी रक्षा करना उसका कर्तव्य है। पर अलमको इस मायाविनीका भीतरी अभिप्राय वह कैसे समझावे? समझानेसे कही उसका प्रलोभन निवृत्त न होकर उलटा बढ गया तो?

और, भइया बेचारे ? वे तो उसके पतिके अखबारके लिए ही दिन-रात मेहनत करते-करते मरे जा रहे है, और मन्दाका यह हाल कि एक कोनेमें बैठी अमलको लुभानेकी सोच रही है ! भइया तो बिलकुल निश्चिन्त हैं। मन्दापर उनका अथाह विश्वास है। इन सब बातोंको अपनी ऑखोंसे देखकर भला वह कैसे स्थिर रह सकती है ? बडा अन्याय है यह ! लेकिन पहले तो अमल ऐसा नही था ! जबसे लिखना शुरू करके नाम पैदा किया है, तभीसे यह सब अनर्थ दिखाई देने लगे हैं। चारु ही तो उसके लिखनेमे जड है। बुरे क्षणमे अमलको लिखनेका उत्साह उसीने दिया था। अब क्या अमलपर उसका पहलेकी तरह जोर चलेगा ? अमलको अब और-भी पॉच जनोंके आदरका स्वाद मिल गया है, इसलिए एकके घट जानेसे उसका कुछ बनता-बिगडता नही।

चारु साफ समझ गई कि उसके हाथसे निकलकर अन्य पाँच-जनोंके हाथ पडकर अमल बडी आफतमे फँस गया है। उसे अब वह ठीक अपना समकक्ष नहीं समझता। आज चारुसे वह आगे बढ गया है। आज वह है लेखक और चारु है पाठक ! इसका प्रतिकार करना ही होगा उसे।

सोचते-सोचते चारुका मन मानो अस्फुट स्वरमे बोल उठा, 'ओह, सरल अमल, मायाविनी मन्दा, और बेचारे भइया !'

६

उस दिन आषाढ़के नवीन मेघोसे आकाश छा गया था। कमरेमें अँधेरा घना हो आनेसे चारु अपनी खुली खिड़कीके पास बैठी सिर झुकाये कुछ लिख रही थी।

अमल पीछेसे कब दबे-पाँव आकर खडा हो गया, उसे नही मालूम। बदलीके स्निग्ध प्रकाशमें चारु लिखती गई, और अमल पढता गया। उसके सामने अमलकी ही लिखी-हुई दो-एक छपी-हुई रचनाएं खुली पडी थीं। चारुके लिए वे ही उसकी रचनाका एकमात्र आदर्श थीं।

"तुम तो कहा करती थीं कि तुम्हें लिखना आता ही नही !"—सहसा अमलका स्वर सुनकर चारु एकाएक चौंक पडी, और चटसे उसने अपनी कापी दुबका ली। बोली—"यह तुम बहुत ज्यादती करते हो। अन्याय है यह तुम्हारा !"

अमलने कहा—"इसमे अन्याय क्या हुआ ?"

चारुने कहा—"छिपे-छिपे देख क्यों रहे थे ?"

अमलने जवाब दिया—"प्रकट रूपसे देख नही पाता इसलिए।"

चारु अपनी रचना फाड़ फेंकना चाहती थी, पर अमलने चटसे उसके हाथसे कापी छीन ली। चारुने कहा—"अगर तुम पढोगे, तो तुमसे मेरी जनम-भरके लिए अट्टी हो जायगी !"

अमलने कहा—"अगर पढनेकी मनाही करोगी, तो तुमसे मेरी जिन्दगी भरके लिए अट्टी हो जायगी !"

चारुने कहा—"मेरे कंठकी कसम है, लालाजी, पढना मत !"

अन्तमें चारुको ही हार माननी पडी। कारण, अमलको अपनी रचना दिखानेके लिए भीतरसे उसका जी फडफड़ा रहा था। किन्तु दिखाते वक्त उसे इतनी शरम आयेगी, यह उसने नही सोचा था। अमलने जब बहुत अनुनय करनेके बाद पढना शुरू किया, तो चारुके हाथ-पैर बरफ-से ठंढे पड गये। बोली—"मै जरा पान ले जाऊं।" और चटसे बगलके कमरेमे पान लगाने चली गई।

अमल पढना खतम करके चारुसे जाकर बोला—"भाभी, लिखा तो तुमने बहुत अच्छा है।"

चारु पानपर कत्था लगाना भूल गई, बोली—"चलो रहने दो, मजाक उड़ानेकी जरूरत नहीं। दो, मेरी कापी दो।"

अमल बोला—"कापी अभी नहीं दूंगा, नकल करके इसे छपने भेजूंगा।"

चारुने कहा—"हॉ, छपने तो जरूर भेजोगे ! सो नही होनेका।"

चारु अपनी कापी पानेके लिए अमलके पीछे पड गई। पर अमलने भी किसी तरह पीछा नहीं छोडा। उसने जब बार-बार कसम खाकर कहा

कि 'अखबारमें भेजने लायक है' तब चारुने मानो बिलकुल निराश होकर कहा—"तुमसे मैं जीत थोड़े ही सकती हूँ! जिस बातकी मनमें ठान लोगे, उसे तुम बगैर पूरा किये नहीं छोड़ोगे। बड़े जिद्दी हो तुम, जाओ!"

अमलने कहा—"भाई साहबको एक बार दिखाना होगा।"

सुनते ही चारु पान लगाना छोड़कर जल्दीसे उठ खड़ी हुई; और कापी छीननेकी कोशिश करती हुई बोली—"नहीं, उन्हें नहीं सुना सकते! उनसे अगर मेरी लिखनेकी बात कही, तो मैं फिर एक अक्षर भी कभी न लिखूँगी!"

अमलने कहा—"भाभी, तुम बड़ी-भारी गलती कर रही हो। भइया मुँहसे चाहे जो भी कहें, तुम्हारी रचना देखकर बहुत खुश होंगे।"

चारु बोली—"होने दो, मुझे खुशीकी जरूरत नहीं।"

चारु प्रतिज्ञा किये बैठी थी कि वह लिखेगी और अमलको आश्चर्यचकित कर देगी। मन्दा और उसमें कितना अन्तर है, इस बातको प्रमाणित किये बगैर वह न मानेगी। पिछले कई दिनोंमें; उसने बहुत लिखा है और फाड़-फाड़कर फेंक दिया है। उसने जो भी लिखना शुरू किया, वह बिलकुल अमल सरीखा हो गया। मिलाकर देखा तो कहीं-कहीं बिलकुल अमलकी रचनाकी नकल-सी ही मालूम हुई, और वही अंश अच्छे हुए, बाकीके मामूली। देखकर जरूर अमल मन-ही-मन हँसेगा, इस बातकी कल्पना करके चारुने उन सबको टुकड़े-टुकड़े करके तालाबमें फेंक दिया कि कहीं एक-आध टुकड़ा अमलके हाथ न लग जाय।

पहले उसने लिखा, 'सावनके बादल'; और सोचा कि उसने भावोंके अश्रुजलसे अभिषिक्त एक बहुत अच्छी रचना लिख डाली। पीछे सहसा होश आया कि वह तो अमलके 'आषाढके चाँद'का दूसरा पहलू है! अमलने लिखा था, "भाई चाँद, तुम बादलोंमें चोरकी तरह छुपे-छुपे क्यों फिरते हो?" और चारुने लिखा है, "सखी कादम्बिनी, सहसा तुम कहाँसे आकर नील अंचलके नीचे चाँदकी चोरी करके भागी जा रही हो?" इत्यादि।

जब किसी भी तरह वह अमलकी शैलीको न छोड़ सकी, तो उसने लिखनेका विषय बदल दिया। चाँद, मेघ, शेफालिका इन सबको छोड़कर

उसने 'देवीके मन्दिरमे' लिखा। उसके पीहरमे वृक्षोकी छायासे अन्धकारमय तालाबके किनारे कालीका मन्दिर था। उस मन्दिरके विषयमें बचपनकी कल्पना, भय और उत्सुकता लिये हुए उसको कुछ विचित्र स्मृतियाँ थी, उसकी जाग्रत देवीके महात्म्यके सम्बन्धमे गाँवमे चिर-प्रचलित प्राचीन किम्वदन्तियाँ थीं, उन्हीको लेकर उसने यह गद्य लिखा था। उसका प्रारम्भिक भाग अमलकी शैलीपर काव्याडम्बर-पूर्ण था, पर कुछ आगे चलकर रचना अपने-आप ही सरल होकर गाँवकी भाषा-भंगिमा और आभाससे भर गई।

और, वही रचना अमलने छीन ली! उसे मालूम हुआ, शुरूका भाग बहुत अच्छा हुआ है, पर अन्त तक कवित्वकी रक्षा नही हुई। कुछ भी हो, प्रथम रचनाके लिहाजसे लेखिकाका उद्यम प्रशंसनीय है।

चारुने कहा—"लालाजी, हम दोनो मिलकर एक मासिकपत्र निकालें तो कैसा हो?"

अमलने कहा—"बहुतसे रौप्यचन्द्रके बिना पत्र चलेगा कैसे?"

चारु—"हमारे इस पत्रमे कोई खर्च नही। छपेगा थोडे ही, हाथका लिखा होगा, उसमे हमारे-तुम्हारे सिवा और किसीका लेख नही निकलेगा, और न किसीको पढने ही दिया जायगा। सिर्फ दो प्रति निकलेंगी, एक तुम्हारे लिए और एक मेरे लिए।"

कुछ दिन पहले यह बात होती, तो अमल मारे खुशीके उछल पडता, पर अब गोपनताका उत्साह उसका जाता रहा। अब बिना दस-बीसको सामने रखे लिखनेमे उसे आनन्द ही नही आता। फिर भी पुराना ठाठ कायम रखनेके लिए उसने उत्साह दिखाया। बोला—"बड़ा मजा रहेगा!"

चारुने कहा—"मगर तुम्हें एक प्रतिज्ञा करनी होगी। अपने पत्रके सिवा और कही भी तुम लेख प्रकाशित नही करा सकते।"

अमल बोला—"तब तो सम्पादक लोग मुझे मार ही डालेंगे।"

चारुने कहा—"और मेरे हाथमे मारनेका कोई अस्त्र ही नही, क्यो?"

बात तय हो गई। दोनों सम्पादक, दोनों लेखक और दोनो पाठकोंकी कमेटी बैठी। अमलने कहा—"पत्रका नाम रखा जाय 'चारुकला'!"

चारुने कहा—"नहीं, उसका नाम होगा 'अमला'।'

इस नई व्यवस्थासे चारु बीचके कुछ दिनोका दु ख भूल गई। इनके मासिक-पत्रमें मन्दाके घुसनेका कोई रास्ता ही नही, और बाहरवालोंके लिए भी रास्ता बन्द है।

७

एक दिन भूपतिने आकर कहा—"चारु, तुम लेखिका हो जाओगी, ऐसी तो कभी कोई बात नही हुई थी!"

चारु चौककर लाल हो गई, बोली—"मै, और लेखिका! किसने कहा तुमसे? हरगिज नही।"

भूपतिने कहा—"माल समेत गिरफ्तार हो गई हो, प्रेयसी! सवूत हाथो-हाथ लो!" कहते-हुए भूपतिने 'सरोरुह' का वह अङ्क निकालकर दिखाया। चारुने देखा, जिन लेखोको वह अपनी गुप्त सम्पत्ति समझकर अपने हस्त-लिखित मासिक-पत्रमें संचित कर रही थी, वे ही लेख मय लेखक-लेखिकाके नामके 'सरोरुह' में छाप दिये गये हैं।

उसे मालूम हुआ, मानो किसीने उसके पिंजड़ेकी बड़े जतनसे पाली-हुई चिड़ियोको, दरवाजा खोलकर, उड़ा दिया है। भूपतिके सामने पकड़े जानेकी लज्जाको भूलकर वह विश्वासघाती अमलपर मन-ही-मन बहुत नाराज होने लगी।

'और यह देखो!" – कहते हुए भूपतिने चारुके सामने 'विश्वबन्धु' पत्र खोलकर रख दिया, उसमें 'आजकलकी लेखन-शैली' शीर्षक किसीका एक लेख निकला था।

चारुने उसे हाथसे अलग हटाते हुए कहा—"इसका मै क्या करूंगी!" तब अमलपर उसे इतना गुस्सा आ रहा था कि मारे अभिमानके वह दूसरी तरफ मन ही नही दे सकती थी।

भूपतिने जोर देकर कहा—"एक बार पढ तो देखो!"

चारुको उसपर आँखें फेरनी ही पडी। आधुनिक किसी-कीसी श्रेणीके

लेखकोके भावाडम्बरसे भरे-हुए गद्यकी निन्दा करते हुए लेखकने बड़ा कडा लेख लिखा है। उसमे समालोचकने मन्मथ दत्तकी लेखन-शैलीका बहुत जोरका मजाक उडाया है, और उसके साथ तुलना करते-हुए नवीन लेखिका श्रीमती चारुलताकी भाषाकी अकृत्रिम सरलता, सहज सरसता और चित्र-रचनाकी निपुणताकी बहुत प्रशसा की है। लिखा है, "ऐसी रचना-शैलीका अनुकरण करके सफलता प्राप्त कर सकें, तभी अमल-कम्पनीका उद्धार हो सकता है, अन्यथा वह बिलकुल फेल हो जायगी, इसमे कोई सन्देह नही।"

चारु अपनी रचनाओंकी इस प्रशंसासे जब-जब प्रसन्न होनेको तैयार हुई, तब तब वह सहसा व्यथित होने लगी। प्रसन्नता उसके मनमे मानो किसी कदर आना ही नही चाहती। प्रशंसाका लोभनीय सुधा-पात्र ज्यों ही उसके ओठों तक पहुँचता, त्यो ही चटसे वह उसे धकेलकर अलग कर देने लगी।

चारुने समझा कि उसकी रचनाएँ पत्रोंमें छपाकर अमलने सहसा उसे विस्मित कर देनेका सकल्प किया होगा। अन्तमें, छप जानेके बाद उसने तय किया होगा कि किसी पत्रमे प्रशसापूर्ण आलोचना निकले तो दोनों एकसाथ दिखाकर चारुका रोष ठडा और उत्साह गरम कर देगा। मगर जब प्रशंसा निकली तो अमल उसे आग्रहके साथ दिखाने क्यो नही आया? इस समालोचनासे अमलको चोट पहुँची होगी, और उसे वह दिखाना नही चाहता, इसीलिए इन पत्रोंको वह छिपा गया है। चारुने अपने आरामके लिए अत्यन्त एकान्तमें जो एक साहित्य-नीड बनाया था, सहसा प्रशंसाकी शिला-वृष्टिका एक बडा-सा ओला पडते ही उसके स्खलित होकर नीचे गिर पडनेकी नौबत आ पहुँची। चारुको यह कतई अच्छा नही लगा।

भूपतिके चले जानेपर चारु अपने सोनेके कमरेमे जाकर चुपचाप पलंगपर जा बैठी। सामने उसके 'सरोरुह' और 'विश्वबन्धु' खुले पडे थे।

अमलने कापी हाथमें लिये-हुए, सहसा चारुको चौंका देनेके खयालसे, दबे-पाँव पीछेसे प्रवेश किया। चारुके पास जाकर देखा तो, वह अपने सामने 'विश्वबन्धु' की समालोचना खोले निस्तब्ध बैठी है।

अमल जैसे आया था, वैसे ही दबे-पाँव बाहर निकल गया। वह सोचने लगा, 'मेरी निन्दा करके चारुकी शैलीकी प्रशंसा होनेसे चारुको ऐसी खुशी कि बाहरका कुछ होश-हवास तक नही !' और क्षण-भरमे उसका सम्पूर्ण चित्त मानो कड़ुआ हो गया। चारु एक मूर्खकी समालोचना पढके अपनेको गुरुसे भी बढकर समझने लगी, यह सोचकर अमल चारुपर बहुत ही नाराज हो उठा। मन हीं मन उसने कहा, 'चारुको चाहिए था कि उस अखबारके टुकडे-टुकड़े कर डालती और आगमे जलाकर भस्म कर देती।'

चारुपर गुस्सा होकर अमल तुरत मन्दाके कमरेके सामने पहुँचा, पुकारा—"मन्दा-भाभी !"

मन्दा बोली—"आओ, लालाजी, आज तो बिना माँगे ही दर्शन पा गई ! आज मेरी तकदीर बुलन्द मालूम होती है।"

अमलने कहा—"अपनी दो-एक नई रचनाएँ लाया हूँ, सुनोगी क्या ?"

मन्दाने कहा—"कितने दिनोसे 'सुनाऊंगा, सुनाऊंगा' कहके आशा देते आ रहे हो, पर सुनाते कहाँ हो ? जरूरत नही, भइया, फिर कही कोई गुस्सा हो गई तो तुम्हारी ही आफत है, मेरा क्या है !"

अमलने जरा-कुछ तीखे स्वरमे कहा—"गुस्सा कौन होगी ? क्यों कोई गुस्सा होगी ? अच्छा, जो होगा सो देखा जायगा, तुम अभी सुनो तो सही !"

मन्दा अत्यन्त आग्रहके साथ जल्दीसे संयत होकर बैठ गई। और अमलने सुरीली आवाजमे समारोहके साथ पढना शुरू किया।

अमलकी रचना मन्दाके लिए बिलकुल ही विदेशी थी, उसमे उसे कही कोई किनारा नही सुझाई देता, और इसीलिए वह अपने सारे चेहरेपर आनन्दकी हँसी लाकर अतिरिक्त व्यग्रताके साथ सुनने लगी। उत्साहसे अमलका कण्ठ उत्तरोत्तर ऊंचा होने लगा।

अमल पढने लगा—"अभिमन्युने जैसे गर्भावस्थामे सिर्फ व्यूहमे प्रवेश करना ही सीखा था, निकलना नहीं सीखा, उसी तरह नदीके स्रोतने गिरि-कन्दराके पाषाण-जठरमे रहकर केवल सामने ही चलना सीखा है, पीछे लौटना

नहीं सीखा। हाय रे नदीका स्रोत, हाय रे यौवन, हाय रे काल, हाय रे ससार, तुम सब-के-सब सिर्फ सामने ही चल सकते हो, – जिस मार्गमे स्मृतिके स्वर्ण-मण्डित कङ्कड बखेर आते हो, उस मार्गपर फिर कभी कदम ही नही रखते! आदमीका मन ही सिर्फ पीछेकी ओर देखा करता है, अनन्त जगत् उस तरफ मुडकर देखता भी नही!"—

ठीक इसी समय मन्दाके दरवाजेके पास एक छाया दिखाई दी। और मन्दाने उसे देख लिया, पर ऐसे ढगसे जैसे देखा ही न हो! और वह अनिमेष-दृष्टिसे अमलके मुंहकी ओर देखती-हुई स्थिर मनोयोगके साथ उसका पढना सुनने लगी।

छाया उसी वक्त वहाँसे हट गई।

चारु प्रतीक्षा कर रही थी कि अमलके आनेपर उसके सामने वह 'विश्वबन्धु' पत्रको यथोचित रूपसे लाछित करेगी और प्रतिज्ञा भग करके अमलने जो उसकी रचना बाहरके मासिकपत्रमे प्रकाशित कराई है, इसके लिए उसे फटकारेगी।

किन्तु, अमलके आनेका समय निकल गया, फिर भी उसका पता नही। चारुने एक-और गद्य लिखकर तैयार कर लिया था। अमलको सुनानेकी इच्छा है, किन्तु श्रोताकी अनुपस्थितिमे वह पडा ही है।

इसी समय कहीसे उसे अमलकी अवाज सुनाई दी। 'अच्छा! मन्दाके कमरेमे!' – सोचते ही बाणसे बिधी हुई-सी वह उठ खडी हुई। दबे-पॉव वह मन्दाके दरवाजेके पास जाकर खडी हो गई। अमल जो लेख मन्दाको सुना रहा था, उसे चारुने अभी तक सुना ही नही! अमल पढ रहा था, 'आदमीका मन ही सिर्फ पीछेकी ओर देखा करता है, अनन्त जगत् उस तरफ मुडकर देखता भी नहीं।'

चारु जैसे दबे-पॉव आई थी वैसे वह चुपके-से जा न सकी। आज एकके बाद एक-दो-तीन आघातोने उसे बिलकुल धैर्यच्युत कर दिया। 'मन्दा एक अक्षर भी समझ नहीं रही और अमल बिलकुल निर्बोध मूढकी तरह उसे अपनी रचना सुनाकर तृप्त हो रहा है!'– यह बात जोरसे चिल्लाकर कह आनेकी

इच्छा हुई ; पर मुंहसे कुछ कह न सकनेके कारण, मारे क्रोधके, वह पैरोकी आवाजसे उसे प्रकट कर आई। अपने शयन-गृहमें प्रवेश करके उसने जोरसे, आवाजके साथ, किवाड बन्द कर लिये।

अमलने क्षण-भरके लिए पढना स्थगित कर दिया। मन्दाने हँसकर चारुकी तरफ इशारा किया। अमलने मन-ही-मन कहा, 'भाभीकी कैसी ज्यादती है! उन्होने यही सोच रखा है कि मै उन्हीका खरीदा-हुआ गुलाम हूं! उनके सिवा और किसीको भी अपनी रचना नही सुना सकता! यह तो बडा-भारी जुल्म है। और फिर, पहलेसे और भी ऊंचे स्वरमे पढने लगा।

पढना खतम हो जानेपर अमल चारुके कमरेके सामनेसे निकल गया, एक बार सिर्फ देख-भर लिया कि चारुका दरवाजा बन्द है।

चारुने पैरोकी आहटसे समझ लिया कि अमल उसके कमरेके सामनेसे चला जा रहा है। एक बार रुका तक नही! क्रोध और क्षोभसे उसे रुआई भी न आई। उसने अपने नये लेखोंकी कापी निकालकर, उसका प्रत्येक पन्ना फाड-फाडकर टुकडे-टुकडे करके ढेर लगा दिया। हाय, किस कुमुहूर्तमे यह लिखना-पढना शुरू हुआ था!

८

शामके वक्त, बरामदेके टबसे जुहीकी खुशबू आ रही थी। बिखरे-हुए बादलोके भीतरसे स्निग्ध आकाशमे तारे दिखाई दे रहे थे। आज चारुने बाल नही सँवारे, कपड़े भी नहीं बदले। खिडकीके पास अँधेरेमें अकेली बैठी है, मृदु-मन्द हवा उसके खुले बालोको उडा रही है और उसकी आँखोसे जो टपटप आँसू गिर रहे हैं, उसका उसे होश ही नहीं!

इतनेमे भूपतिने कमरेमें प्रवेश किया। उनका चेहरा बहुत ही उदास और हृदय भाराक्रान्त था। भूपतिके आनेका यह समय नही था। अखबारके लिए कुछ लिखकर और प्रूफ देखकर घर आनेमे उन्हें अकसर देर हो जाती है। आज शामके बाद ही वे मानो किसी सान्त्वनाकी आशासे चारुके पास चले आये। कुछ आश्चर्यके साथ उन्होने चारुको पुकारा—"चारु!"

भूपतिकी आवाजसे चौंककर चारु चटसे उठ बैठी। उसने यह नहीं सोचा था कि इस समय भूपति आ सकते हैं। भूपतिने उसके बालोंमें उंगलियाँ फेरते-हुए स्नेहार्द्र कण्ठसे कहा—"अँधेरेमें तुम अकेली बैठी हो जो! मन्दा कहाँ गई?"

चारुने जैसी कि आशा कर रखी थी, आज दिन-भर वैसा कुछ हुआ ही नहीं। वह निश्चित जानती थी कि अमल आके माफी माँगेगा। उसके लिए तैयार होकर ही वह प्रतीक्षा कर रही थी। इतनेमें भूपतिके अप्रत्याशित कण्ठ-स्वरसे मानो वह अपनेको सम्हाल न सकी, और यकायक रो पड़ी।

भूपतिने घबराकर और व्यथित होकर पूछा—"क्या हुआ, चारु?"

'क्या हुआ है' – यह बताना मुश्किल है। और ऐसा हुआ भी क्या है जो कहा जाय! कोई खास बात तो हुई नहीं। अमलने अपनी नई रचना पहले उसे न सुनाकर मन्दाको सुनाई है, इस बातकी वह किससे क्या शिकायत करे! सुननेसे भूपति क्या हँसेंगे नहीं? इस छोटी-सी बातमें जबरदस्त शिकायतका विषय कहाँ छुपा-हुआ है, उसे ढूंढ निकालना चारुके लिए असाध्य है। बिना-कारण वह इतना दुःख पा रही है, यह बात पूरी तरहसे समझमें न आनेसे उसकी वेदना और भी बढ गई।

भूपतिने कहा—"बताओ न, तुम्हें क्या हो गया! मैंने क्या तुमपर किसी तरहका अन्याय किया है? तुम तो जानती ही हो, मैं काम-काजके झंझटमें किस कदर फँसा रहता हूँ! तुम्हारे मनको किसी तरहकी ठेस पहुची हो, तो इतना निश्चित समझना कि मैंने जान-बूझकर हर्गिज नहीं पहुँचाई।"

भूपति चारुसे ऐसे विषयमें पूछ रहा है, जिसका उसके पास कोई जवाब नहीं, और इसलिए चारु भीतर-ही-भीतर और भी अधीर हो उठी। वह सोचने लगी कि भूपति इस समय उसे किसी तरह छुटकारा दे दें तो वह जी जाय।

भूपतिने दूसरी बार भी कुछ उत्तर न पाकर फिर स्नेह-सिक्त स्वरमें कहा—"मैं बराबर तुम्हारे पास आ नहीं पाता, चारु, इसके लिए मैं अपराधी हूँ, और शरमिन्दा हूँ। मगर अब ऐसा न होगा। अब मैंने तय कर लिया

है कि दिन-रात अखबारके पीछे न पड़ा रहूँगा। मुझे तुम जितना चाहोगी उतना ही पाओगे, चारु !"

चारु अधीर होकर उठी, बोली—"इसलिए नही—"

भूपतिने कहा—"तो किस लिए ?" और वे पलंगपर बैठ गये।

चारु अपने विरक्तिके स्वरको छिपा न सकी, बोली—"अभी नही, रातको बताऊगी।"

भूपति क्षण-भर स्तब्ध रहकर बोले—"अच्छा, जाने दो।" और धीरेसे उठकर बाहर चले गये। उन्हें खुद जो-कुछ कहना था, सो भी नही कह सके।

भूपति एक तरहका क्षोभ लेकर चले ही आये थे, और यह बात चारुसे छिपी न रही। उसके मनमे आई कि वह उन्हें वापस बुला ले, पर बुलाकर कहेगी क्या ? अनुताप उसके कलेजेमे छिद-सा गया, और कोई प्रतिकार उसे ढूंढे न मिला।

रात हुई। चारुने आज खूब जतनसे भूपतिकी थाली सजाई, और पंखा हाथमें लिये बैठी रही।

इतनेमे उसने सुना कि मन्दा ऊंचे स्वरसे पुकार रही है—"बिरजू, बिरजू !" और बिरजू नौकरके आ जानेपर पूछ रही है—"अमल बाबू खा चुके क्या ?"

बिरजूने जवाब दिया—"खा चुके।"

मन्दाने कहा—"खा चुके, और तू पान नहीं ले गया जो !' मन्दा बिरजूको खूब डाटने लगी।

ठीक इसी समय भूपति भोजन करने बैठे। चारु पंखा करने लगी।

चारुने आज प्रतिज्ञा की थी कि भूपतिके साथ वह प्रसन्नता और मिठासके साथ वह खूब बातें करेगी। बातचीतका विषय वह पहलेसे ही सोचकर तैयार हुई बैठी थी। पर मन्दाके कण्ठस्वरने उसका विस्तृत आयोजन तोड-फोड कर नष्ट दिया। नतीजा यह हुआ कि भोजन कराते समय भूपतिसे वह एक भी बात न कर सकी। भूपति भी अत्यन्त विमर्ष और अन्यमनस्क थे।

उन्होंने अच्छी तरह खाया भी नही। चारुने सिर्फ एक बार पूछा—"आज कुछ खाया तो नहीं तुमने ?"

भूपतिने प्रतिवाद करते-हुए कहा—"क्यों, कम तो नहीं खाया !"

सोनेके कमरेमे पहुँचनेपर भूपतिने कहा—"हाँ, रातको तुम क्या कहना चाहती थी, कहो !"

चारुने कहा—"देखो, कुछ दिनोंसे मन्दाका व्यवहार मुझे अच्छा नहीं लग रहा। उसे यहाँ रखनेकी अब मेरी हिम्मत नही पडती।"

भूपतिने कहा—"क्यों, क्या कर डाला ?"

चारुने कहा—"अमलके साथ उसका ऐसा व्यवहार हो रहा है कि देखनेवालेको शरम आ जाय !"

भूपतिने हँसकर कहा—"ह ह ह ! तुम पागल तो नही हो गई ! अमल अभी लडका ही है, उस दिनका—"

चारु बोली—"तुम तो घरकी खबर कुछ रखते नही, सिर्फ बाहरकी खबरें ही छापा करते हो ! कुछ भी हो, बेचारे भइयाके लिए मुझे सोच है। उन्होंने कब खाया, कब नहीं खाया, मन्दा इस बातकी खोज ही नही रखती ; और अमलके लिए ऐसी चौकन्नी कि पानमे जरा चूना भी कम हो जाय तो नौकर-चाकरोंको डाट-फटकारकर अनर्थ कर डालती है !"

भूपतिने कहा—"असलमें, तुम औरतोकी जात ही बडी शक्की होती है। कुछ नही, फालतू बात है।"

चारुने कहा—"अच्छी बात है, हम औरतें सब शक्की ही सही ! पर ऐसा बेहयापन मे अपने घरमे न होने दूगी, कहे देती हू !"

चारुकी इन-सब बेबुनियाद आशंकाओंसे भूपति मन-ही-मन हँसा और खुश भी हुआ। घर जिससे पवित्र रहे और दाम्पत्य-धर्मको आनुमानिक या काल्पनिक कलंक भी रचमात्र स्पर्श न कर जाय, इसके लिए सती-साध्वी स्त्रियोंका अतिरिक्त सावधान रहना और सन्दिग्ध दृष्टि रखना, इसमे भी एक माधुर्य और महत्त्व है।

भूपतिने श्रद्धा और स्नेहसे चारुका ललाट चूमकर कहा—"प्रेयसी, इस

बातको लेकर शोर मचानेकी कोई जरूरत नहीं, अब उमापति मैमनसिहमें प्रैक्टिस करने जा रहा है, मन्दाको भी साथ लेता जायगा।"

अन्तमें अपनी दुश्चिन्ता और इन-सब अप्रिय आलोचनाओंको दबा देनेके लिए भूपतिने टेबिलसे एक कापी उठाकर कहा—"तुम अपनी कोई रचना सुनाओ न, चारु!"

चारुने कापी छीनकर कहा—"यह तुम्हे अच्छी नही लगेगी, तुम मजाक उड़ाओगे!"

भूपति इस बातसे कुछ व्यथित हुए, पर चारुसे छिपाकर हँसते हुए बोले—"अच्छा, मै मजाक नही उड़ाऊंगा, ऐसा मन लगाकर सुनूंगा कि तुम्हे भ्रम हो जायगा कि शायद मै सो गया हू!"

किन्तु फिर भी भूपति उसपर कुछ प्रभाव न डाल सके, और देखते-देखते सब कापियाँ अनेक आवरणोमे विलीन हो गई।

९

भूपति अपने मनकी सब बाते चारुसे न कह सके। उमापति भूपतिके अखबारका मैनेजर था। चन्दा वसूल करना, प्रेस और बाजारका लेन-देन, नौकरोको तनखा देना – यह सब काम उसीके जिम्मे था।

इस बीचमे, अचानक एक दिन कागजवालेकी तरफसे वकीलकी चिट्ठी पाकर भूपति दग रह गये। भूपतिपर उसके सत्ताईस हजार रुपये निकलते है!

भूपतिने उमापतिको बुलाकर कहा—"यह क्या बात है! ये रुपये तो मै तुम्हे दे चुका हूं! कागजवालेका देना दो-चार हजारसे ज्यादा नही होना चाहिए।"

उमापतिने कहा—"जरूर उसने कोई गलती की है।"

मगर बात दबी नही रही। कुछ दिनोसे उमापति इसी तरह धोखा देता आ रहा है। सिर्फ कागजके बारेमे ही नहीं, भूपतिके नामसे उसने

बाजारमे बहुत कर्जा कर लिया है। गाँवमे जो वह अपने लिए पक्की हवेली बनवा रहा है उसका अधिकाश सामान उसने भूपतिके नाम लिखाकर लिया है; और उसमे बहुत-सा रुपया कागज-खातेका लगा दिया है।

आखिर जब पकड गया, तो रूखे स्वरसे बोला—"मै तो भागा नही जा रहा! काम करके मे धीरे-धीरे सब चुका दूगा। तुम्हारी अगर एक कौडी भी बाकी रह जाय तो मेरा नाम बदल देना।"

उसके नाम-परिवर्तनसे भूपतिको कोई तसल्ली नही हो सकती। असलमे, मात्र रुपयेके नुकसानसे उन्हे उतना कष्ट नही हुआ, पर अकस्मात् इस विश्वासघातसे उनके पैरोके नीचेसे जमीन खिसक गई।

इसीलिए उस दिन वे असमयमें घरके भीतर गये थे। संसारमे कमसे कम एक विश्वास करने-लायक जगह है, क्षण-भरके लिए इस बातका अनुभव कर आनेके लिए उनका हृदय व्याकुल हो उठा था। परन्तु चारु तब अपने ही दु खसे, संध्या-प्रदीप बगैर जलाये ही, खिडकीके पास अँधेरेमे बैठी थी।

उमापति दूसरे ही दिन मैमनसिह जानेकी तैयारी करने लगा। बाजारवालोको मालूम होनेके पहले ही वह खिसक जाना चाहता है। भूपति मारे घृणाके उमापतिसे बोले तक नही और भूपतिकी इस चुप्पीको उमापतिने अपना सौभाग्य समझा!

अमलने आकर मन्दासे पूछा—"मन्दा-भाभी, आखिर क्या बात हुई? चीज-वस्त बाँधनेकी यह धूम कैसी?"

मन्दाने कहा—"पराया घर ठहरा, जाना तो पडेगा ही! हमेशा क्या यहीं बनी ही रहूगी!"

अमल बोला—"आखिर है कहाँकी तैयारी?"

मन्दा बोली—"देशकी।"

अमलने कहा—"क्यो, यहाँ क्या तकलीफ हो गई?"

मन्दाने कहा—"तकलीफ मुझे क्या है बताओ! तुम सबोंके साथ थी, आरामसे ही थी। लेकिन औरोको जो तकलीफ होने लगी!"—इतना कहकर उसने चारुके कमरेकी तरफ इशारा किया।

अमल गम्भीर होकर चुप हो रहा।

मन्दाने कहा—"छि छि, कैसी शरमकी बात है! भूपति बाबू अपने मनमें क्या सोचते होंगे!"

अमलने इस बातको लेकर आगे कुछ चर्चा नहीं की। अपने मनमें सिर्फ इतना समझ लिया कि चारुने उन दोनोंके बारेमें भइयासे ऐसी कोई बात कही है जो कहनेकी नहीं है।

अमल घरसे निकलकर रास्तेमें टहलने लगा। उसकी ऐसी तबीयत हो गई कि वह इस घरमें अब वापस न आवे। भाइयाने अगर भाभीकी बातपर विश्वास करके उसे अपराधी समझ लिया हो, तो, मन्दाको जिस रास्ते जाना पड रहा है उसे भी वही रास्ता पकड़ना चाहिए। मन्दाको विदा करना एक हिसाबसे अमलके लिए निर्वासनका आदेश है, सिर्फ वह मुहसे कहा नहीं गया, बस। इसके बाद उसका कर्तव्य बिलकुल स्पष्ट है, अब एक क्षण भी यहाँ नहीं रहा जा सकता। मगर भइया उसके विषयमें मन-ही-मन किसी तरहकी अनुचित धारणा बनाये रखें, यह भी ठीक नहीं। इतने दिनोंसे वे उसे अक्षुण्ण विश्वाससे घरमें स्थान देकर उसका पालन-पोषण करते आये हैं, उस विश्वासपर अमलने किसी भी अंशमें चोट नहीं पहुँचाई, यह बात भाई साहबको बगैर समझाये वह कैसे जा सकता है!

भूपति उस समय रिश्तेदारोंकी कृतघ्नता, पावनेदारोंके तकाजे, जाल हिसाब और रीती तहवीलको लेकर माथेपर हाथ धरे चिन्तामें डूबे हुए थे इस शुष्क मानसिक दुःखमें उनका कोई साथी न था। वे गम्भीर मनोवेदना और कर्जके साथ अकेले खड़े जूझनेके लिए तैयार हो रहे थे।

इतनेमें अमलने आँधीकी तरह उनके कमरेमें प्रवेश किया। भूपतिने अपनी अथाह चिन्तामेंसे सहसा चौंककर उसकी तरफ देखा; और बोले—"क्या खबर है अमल!" अकस्मात उन्हें ऐसा मालूम हुआ जैसे अमल और-कोई दुःसंवाद लेकर आया हो!

अमलने कहा—"भाई साहब, मुझपर सन्देह करनेका क्या कोई कारण हुआ है?"

भूपतिने आश्चर्यके साथ कहा—"तुम्हारे ऊपर सन्देह!" और मन ही मन सोचने लगे, जैसी दुनिया देख रहा हूँ, किसी दिन अमलपर भी सन्देह करना पड़े तो कोई ताज्जुब नही।

अमलने कहा—"भाभीने क्या मेरे चरित्रके सम्बन्धमे तुम्हारे पास कोई शिकायत की है?"

भूपतिने सोचा, 'यह बात है! खैर, जीमे जी तो आया। स्नेहका अभिनय है!' उन्होंने सोचा था कि सर्वनाशपर शायद और-कोई सर्वनाश हो गया! मगर भयङ्कर संकटके समयमे भी इन-सब तुच्छ विषयोको सुनना ही पड़ता है। दुनिया एक तरफ पुलको झकझोरती भी रहेगी और दूसरी तरफ उस पुलको अपनी शाक-सब्जीकी डालियाँ पार करनेके लिए तागीद करनेसे भी बाज न आयेगी! दुनियाका दस्तूर ही यही है।

और कोई वक्त होता, तो भूपति अमलका मजाक उड़ाते, पर आज उनमें वह प्रसन्नता न थी। उन्होने कहा—"पागल तो नही हो गये!"

अमलने फिर पूछा—"भाभीने कुछ कहा नहीं है?"

भूपतिने कहा—"तुमसे वे बहुत प्यार करती है, इसलिए कुछ कहा भी हो तो उसमे गुस्सा होनेकी कोई बात नही।"

अमलने कहा—"काम-धन्धेकी कोशिशके लिए मुझे और-कही जाना चाहिए।"

भूपतिने डाटते हुए कहा—"अमल, तुम ऐसा लड़कपन कर रहे हो जिसकी हद नहीं! अभी मन लगाकर पढो-लिखो। काम-धन्धेकी बात पीछे सोचना।"

अमल उदास चेहरा लिये वहाँसे चला आया। और भूपति अपने अखबारके ग्राहक-रजिस्टरमे दर्ज तीन सालके चन्देके साथ खाता-बहीका हिसाब मिलाने बैठ गये।

१०

वहुत सोच-विचारके वाद अमलने यह तय किया कि भाभीके साथ भाई साहबका मुकावला करा देना होगा, बातको इस तरह छोड देना ठीक नहीं। और साथ ही भाभीको जो-जो कडी-कडी वातें सुनानी हैं उन्हें भी मन-ही-मन याद करने लगा।

उधर मन्दाके चले जानेपर चारुने संकल्प किया कि अमलको वह अपने पास बुलाकर उसका रोष शान्त कर देगी। किन्तु किसी रचना सुननेके बहाने ही उसे बुलाना होगा। अमलकी ही एक रचनाके अनुकरणपर चारुने 'अमावस्याका प्रकाश' शीर्षक एक गद्य तैयार किया है। इतना वह समझ गई है कि अमलको उसकी स्वतन्त्र शैलीकी रचना पसन्द नही आती।

पूर्णिमा जो अपना सम्पूर्ण प्रकाश एकसाथ प्रकट कर देती है, इसके लिए चारुने अपनी नई रचनामे उसे काफी डाट-फटकारकर लज्जित किया है। उसने लिखा है—"अमावस्याके अतलस्पर्श अन्धकारमे षोडश-कलापूर्ण चन्द्रमा का सम्पूर्ण प्रकाश स्तर-स्तरमे आबद्ध पडा है, उसकी एक किरण भी खोई नहीं है, इसीसे पूर्णिमाकी उज्ज्वलतासे अमावस्याकी कालिमा इतनी परिपूर्ण है।" इत्यादि। अमल अपनी सभी रचनाएँ सबके सामने प्रकट कर देता है और चारु ऐसा नही करती, – पूर्णिमा और अमावस्याकी तुलनामे क्या इस बातका आभास नहीं है?

इधर इस परिवारके तीसरे व्यक्ति भूपति किसी आसन्न ऋणकी तागीदसे छुटकारा पानेके लिए अपने परम मित्र मोतीलालके पास रुपये माँगने गये थे। मोतीलालके संकटके समयमें भूपतिने उन्हें कई हजार रुपये उधार दिये थे, और आज वे अपने इस घोर सकटमे उनसे अपने वे ही रुपये पावस लेने गये थे। मोतीलाल नहा-धोकर अपने उघडे बदनपर पंखेकी हवा लगा रहे थे; और सामने लकड़ीके बक्सपर कागज रखकर उसपर छोटे-छोटे अक्षरोंमे हजार बार दुर्गाका नाम लिख रहे थे। भूपतिको देखकर अत्यन्त सहृदयताके साथ बोले—"आओ आओ, आजकल तो तुम्हारे दर्शन ही नही मिलते!"

मोतीलाल मित्रके मुंहसे रुपयेकी वात सुनकर जमीन-आसमानकी चिन्ता करते हुए बोले—"किन रुपयोंकी बात कह रहे हो तुम ! इधर तुमसे कुछ लिया है क्या ?"

भूपतिके, सन् और तारीखके साथ, पुरानी सब बातें याद दिलानेपर मोतीलालने ठहाका मारकर हँसते-हुए कहा—"अच्छा, उन रुपयोंकी कह रहे हो ! अरे, उसे तो बहुत दिन हो गये तमादी हुए !"

भूपतिकी दृष्टिमे मित्रका चेहरा मानो चारों तरफसे बदल-सा गया। दुनियाके जिस हिस्सेसे नक़ाब खुलकर गिर गया, उस हिस्सेको देखकर भूपतिके रोएँ खड़े हो गये। सहसा बाढ़ आ-जानेपर डरा-हुआ आदमी जिधर सबसे ज्यादा ऊंचा देखता है उसी तरफ भागने लगता है, ठीक उसी तरह भूपति भी इस निष्ठुर बहि संसारसे बड़े जोरसे अपने अन्त पुरकी तरफ भागे। मन-ही-मन कहने लगे, 'दुनियामे और चाहे जो भी हो, कम-से-कम चारु तो मुझे धोखा नही देगी।'

चारु उस समय पलगपर बैठी, गोदमें तकिया और तकियेपर कापी रखकर, झुकी-हुई कुछ लिख रही थी। भूपति जब बिलकुल ही उसके पास जा खड़े हुए, तब उसे होश आया और सहम गई। और चटसे वह अपनी पॉलथीके नीचे कापी दबाकर सम्हलके बैठ गई।

हृदयमें जब कोई व्यथा रहती है तब आदमीको जरा-सी बातसे बड़ी-भारी चोट लगती है। चारुको इस तरह अनावश्यक सहमते और जल्दीसे अपनी कापी छिपाते देख भूपतिके मनको गहरी चोट पहुँची।

भूपति धीरेसे चारुके पास बैठ गये। और, चारु अपने रचना-स्रोतमे अप्रत्याशित विघ्न आ जानेसे, और भूपतिके आगे सहसा कापी छिपानेकी व्यस्ततासे, ऐसी हो गई कि फिर उसके मुँहसे कोई बात ही नहीं निकली।

भूपतिको उस दिन अपनी तरफसे कुछ कहना या कहलवाना नही था। वह रीते-हाथ चारुके पास प्रार्थी होकर ही आये थे। चारुकी तरफसे आशकाधर्मी प्रेमका कोई प्रश्न या जरा-सी कोई प्रेमकी बात मिल जानेसे ही उनके घावपर मरहम लग जाता और दाह मिट जाता। किन्तु 'लछमी

रहते लछमी गई' ! क्षण-भरकी आवश्यकता मिटानेके लिए चारुको मानो प्रेम-भण्डारकी चाभी ही कहीं ढूंढे न मिली। और दोनोंके कठोर मौनसे घरकी नीरवता बहुत ही घनी हो उठी।

कुछ देर बिलकुल चुप रहकर भूपति एक गहरी साँस लेकर पलंग छोड़के उठ खड़े हुए, और धीरे-धीरे बाहर चले गये।

इसी समय अमल बहुत-सी कड़ी-कडी बातोंका गट्ठर लिये-हुए जल्दी-जल्दी चारुके कमरेकी तरफ आ रहा था, रास्तेमे उसने भूपतिका जो बिलकुल सूखा सफेद-फक चेहरा देखा तो वह उद्विग्न होकर खड़ा हो गया। बोला—"भाई साहब, आज कुछ तबीयत खराब है क्या तुम्हारी ?"

सहसा अमलका स्निग्ध स्वर सुनते ही भूपतिका सम्पूर्ण हृदय अपने अश्रु-भारसे सहसा मानो उफन-सा उठा। कुछ देर तक उनके मुहसे बात ही नहीं निकली। बडी मुश्किलसे अपनेको सम्हालकर उन्होंने आर्द्र कण्ठसे कहा—"कुछ नहीं हुआ, अमल ! –इधर तुम्हारी कोई रचना निकल रही है क्या ?"

अमलने जो कड़ी-कडी बातें इकट्ठी कर रखी थीं, क्षणमें वे न-जाने कहाँ गायब हो गई ! जल्दीसे भाभीके कमरेमे जाकर वह पूछने लगा—"भाभी, भइयाको क्या हुआ है, बताओ तो ?"

चारुने कहा—"ऐसी तो कोई बात नहीं हुई। किसी दूसरे अखबारने शायद उनके अखबारको गालियाँ दी होंगी।"

अमल सिर हिलाने लगा।

बिना बुलाये ही अमल आ गया और स्वाभाविक-भावसे बातचीत करने लगा – यह देखकर चारुको बहुत ही आराम मिला। उसने तुरत लेखकी बात छेड़ दी, बोली—"आज मैं 'अमावस्याका प्रकाश' लिख रही थी : और जरा चूक जाती तो वे देख ही लेते !"

चारुने निश्चय समझ रखा था कि अमल उसकी नई रचना देखनेके लिए आग्रह करेगा और उसके पीछे पड़ जायगा। और, इसी अभिप्रायसे उसने अपनी कापी निकालकर जरा हिलाई-डुलाई भी। परन्तु, अमलने मात्र

एक वार तीव्र दृष्टिसे चारुके चेहरेकी ओर देखा,–उसने क्या समझा और क्या सोचा, सो वही जाने,–किन्तु दूसरे ही क्षण वह चौककर उठ खडा हुआ। पर्वत-मार्गसे चलते-चलते पथिकने मानो सहसा मेघका कुहरा दूर होते ही चौककर सामने देखा कि हजार हाथ गहरे-गड्ढेमे वह पाँव रखने जा रहा था! अमल विना कुछ बोले ही चुपचाप वाहर चला गया।

अमलके इस अभूतपूर्व आचरणका कुछ अर्थ ही चारुकी समझमे न आया, वह स्तब्ध वैठी उसके चलनेकी गति देखती रह गई।

११

दूसरे दिन भूपतिको फिर बेवक्त घर आना पड़ा। चारुको उन्होने अपने पास बुलाकर कहा—"चारु, अमलके लिए एक वडी अच्छी सगाई आई है।"

चारु अन्यमनस्क थी। बोली—"अच्छी क्या आई है?"

भूपतिने कहा—"सगाई।"

चारु बोल उठी—"क्यो, मै क्या पसन्द नही आई?"

भूपति जोरसे हँस पडे। बोले—"तुम पसन्द आई या नही, यह वात अभी तक अमलसे पूछी नही गई। और अगर आ भी गई होगी, तो मेरा भी तो थोडा-बहुत हक है, उसे मै चटसे नही छोड़नेका!"

चारु कहने लगी—"अ, क्या बक रहे हो जिसका ठीक नही! तुमने कहा नही था अभी कि तुम्हारी सगाई आ रही है?"

चारुका चेहरा सुर्ख हो उठा।

भूपतिने कहा—"तो क्या दौडा-दौडा तुमसे ही कहने आता? कोई इनाम मिलनेकी तो आशा थी ही नही!"

चारु पूछने लगी—"तो किसकी सगाई, अमलकी आई है? अच्छा ही तो है। फिर देर किस बातकी, कर डालो पक्की।"

भूपतिने कहा—"वर्धमानके वकील हैं एक, रघुनाथ बाबू, वे अपनी लडकीके साथ अमलका ब्याह करके उसे पढनेके लिए विलायत भेजना चाहते हैं।"

चारुने आश्चर्य-चकित होकर पूछा—"विलायत ?"

भूपतिने कहा—"हाँ, विलायत।"

चारु बोली—"अमल विलायत जायगा ? यह बहुत अच्छा रहा ! अच्छा ही हुआ। तुम उसे एक बार पूछ तो देखो !"

भूपतिने कहा—"मेरे कहनेके पहले तुम एक बार उसे समझाकर कहोगी तो ठीक रहेगा।"

चारुने कहा—"मै तो हजार बार कह चुकी। मेरी बात मानता कौन है ! मुझसे अब नहीं कहा जायगा।"

भूपति—"तुम्हें क्या मालूम होता है, वह ब्याह नहीं करेगा ?"

चारु—"और भी तो बहुत बार कोशिश की जा चुकी है, कहाँ कोई राजी होता है !"

भूपति—"लेकिन अबकी बार इस मौकेको हाथसे जाने देना उसके लिए ठीक नही। मेरे ऊपर बहुत कर्जा हो गया है, अमलको अब तो मै पहलेकी तरह नहीं रख सकता।"

भूपतिने अमलको बुलवा लिया। अमलके आनेपर उन्होंने कहा—"वर्धमानके वकील रघुनाथ बाबू अपनी लड़कीकी तुमसे सगाई करना चाहते हैं। उनकी इच्छा है कि ब्याह हो जानेके बाद तुम्हें पढानेके लिए विलायत भेजे। तुम्हारी क्या राय है ?"

अमलने कहा—"आपकी अगर आज्ञा हो तो मेरी तरफसे कोई आपत्ति नही।"

अमलकी बात सुनकर भूपति और चारु दोनोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। इस बातकी किसीको आशा ही नही थी कि कहते ही वह राजी हो जायगा।

चारु तीव्र स्वरमें मजाक उड़ाती हुई बोली—"आज तो भइयाकी आज्ञा होते ही अपनी राय दे दी ! अहा, कैसे आज्ञाकारी भाई हैं, जरा देखो तो ! भइयापर ऐसी भक्ति अब तक कहाँ गई थी, लालाजी !"

अमलने कुछ उत्तर न देकर जरा हँसनेकी कोशिश की।

अमलकी इस चुप्पीको देखकर चारुने मानो उसे चेता देनेके लिए दूनी

झड़पके साथ कहा—"ऐसा क्यों नही कहते कि अपनी ही तबीयत हो रही है! हु , मन-मन भावे, मुँडी हिलावे !"

भूपति हँसते-हुए बोले—"मालूम होता है अमल तुम्हारे ही खातिर अब तक सिर हिला रहा था कि कहीं देवरानीकी बात सुनकर तुम्हें डाह न होने लगे !"

इस बातसे चारुका चेहरा सुर्ख हो उठा। वह कोलाहलके साथ कहने लगी—"डाह ! क्यों नही ! मुझे डाह कभी नही होता। मुझसे ऐसा कहना तुम्हारा बडा अन्याय है, हाँ !"

भूपति बोले—"लो, देखो ! अपनी स्त्रीसे भी मजाक नहीं कर सकता !"

चारुने कहा—"नही, ऐसा मजाक मुझे अच्छा नहीं लगता।"

भूपतिने कहा—"अच्छा, अच्छा बड़ा-भारी कसूर हो गया , माफ करो। खैर, – तो ब्याहकी बात ठीक हो गई न ?"

अमलने कहा—"हाँ।"

चारु बोली—"लडकी अच्छी है या बुरी, इतना भी देखनेका सबर न हुआ, लालाजी ! तुम्हारी ऐसी दशा हो आई है, कभी जरा आभास भी तो दिया होता !"

भूपतिने कहा—"अमल, लड़की देखना चाहो तो उसका भी इन्तजाम किया जा सकता है। खबर ली है मैंने, लडकी सुन्दर है।"

अमल—"नही, देखनेकी मै तो कोई जरूरत नही समझता।"

चारु—"इनकी बात तो सुनो ! ऐसा भी होता है कहीं ! पर हम लोगोंको तो कम-से-कम देख लेनी चाहिए।"

अमल—"नही, भाई साहब, देखा-देखीमें झूठ-मूठको देर करनेकी क्या जरूरत ?"

चारु—"जरूरत क्या है, जी ! देर होनेसे छाती जो फटने लगेगी ! तुम मौर बाँधकर अभी निकल पडो न ! क्या खबर, तुम्हारी राज-सम्पदा हीरा-जवाहरातको कोई और उडा ले गया तो !"

अमलको चारुका कोई भी मजाक विचलित न कर सका।

चारु फिर बोली—"विलायत भागनेके लिए भीतरसे तुम्हारा मन फड़फड़ा रहा है, क्यों? यहाँ तुम्हें कोई मार रहा था या बाँध रहा था? हैट-कोट पहनके साहब बगैर बने आजकलके लड़कोंका मन ही नहीं भरता! लालाजी, विलायतसे लौटकर हम जैसे काले आदमियोंको पहचान तो लोगे?"

अवकी बार अमलने जवाब दिया—"तो फिर विलायत जाना ही क्या हुआ!"

भूपतिने हँसकर कहा—"काले रूपको भुलानेके लिए ही तो सात समुद्र पार जाना है! सो, इसमें डरनेकी क्या बात है, चारु, हम तो हैं ही, कालेके भक्तोंकी यहाँ कमी न होगी।"

भूपतिने खुश होकर उसी वक्त वर्धमानको चिट्ठी लिख दी।

ब्याहका दिन भी ठीक हो गया।

१२

इस बीचमे भूपतिको अखबार बन्द कर देना पड़ा। भूपतिके लिए उसका खर्चा चलाना मुश्किल हो गया। 'सर्वसाधारण' नामक जिस विशाल निर्मल पदार्थकी साधनामे भूपति इतने दिनोसे एकाग्र-चित्तसे लगे हुए थे उसे मात्र एक क्षणमे बहा देना पड़ा। भूपतिके जीवनकी समस्त चेष्टाएँ जो अभ्यस्त मार्गसे गत बारह वर्षोंसे अविच्छिन्न धारामें बहती आ रही थी वे सहसा एक जगह मानो गहराईमें डूब गई। इसके लिए भूपति जरा भी तैयार नही थे। अकस्मात् बाधाप्राप्त अपने इतने दिनोके उद्यमोको अब वे कहाँ ले जाये? मानो वे भूखे अनाथ बच्चोकी तरह उनका मुंह ताकने लगे। अन्तमें थककर भूपतिने उन्हें अपने अन्त पुरमे करुणामयी सेवा-परायणा नारीके सामने ले जाकर खड़ा कर दिया।

किन्तु नारी उस समय क्या सोच रही थी? वह मन-ही-मन कह रही थी, 'कैसे आश्चर्यकी बात है! अमलका ब्याह होगा, यह तो अच्छी ही बात है! पर इतने दिनो बाद हमलोगोंको छोड़कर पराये घर ब्याह करके विलायत जायगा, इससे अमलके मनमे थोड़ी देरके लिए एक बार भी दुविधा

उत्पन्न नही हुई ? इतने दिनो तक हमने जो उसे इतने जतनसे रखा, उसका कुछ भी खयाल न करके ज्यो ही जरा भागनेका रास्ता मिला, चटसे कमर कसके तैयार हो गया वह ! मानो वह इतने दिनोसे इसी दिनकी प्रतीक्षामे रहा हो ! और मुँहसे कितनी मीठी-मीठी बाते, कितना प्रेम ! हाय री दुनिया, आदमीको पहचानना मुश्किल है ! कौन जानता था कि जो आदमी इतना लिख सकता है उसके हृदय जरा भी नही !'

अपने परिपूर्ण हृदयसे तुलना करके चारुने अमलके हृदयकी अत्यन्त अवज्ञा करनेकी कोशिश की, पर कर न सकी। भीतर-ही-भीतर निरन्तर एक वेदनाका उद्रेक तप्त शूलकी तरह उसके अभिमानको उकसाने लगा।

अमल आज बाद कल चला जायगा, फिर भी इधर कई दिनोसे उसका पता ही नही। उन दोनोंमे परस्पर जो मनोमालिन्य-सा हो गया है उसे मिटा डालनेके लिए भी जरा फुरसत नही मिली ! चारु प्रतिक्षण सोच रही है कि अमल अपने आप आयेगा। इतने दिनोंके मेल-जोलको वह इस तरह नही तोड़ेगा। किन्तु कहाँ आया अमल ! नही आया। अन्तमे जब विलायत जानेका दिन करीब आ पहुँचा, तब चारुने खुद ही अमलको बुलवाया।

अमलने कहला भेजा, 'थोडी देर बाद आता हूँ।'

चारु अपने बरामदेमे वहीं-की-वही एक चौकीपर बैठ गई। सवेरेसे बदली होनेसे उमस हो रही थी, चारु अपने खुले बालोको यों ही ढीले तौरसे लपेटकर अपने थके-हुए शरीरपर पंखेसे धीरे-धीरे हवा करने लगी।

दूरसे गिरजेकी घडीमे ग्यारह बजनेका घंटा सुनाई दिया। नहा-धोकर भूपति अभी भोजन करने आयेंगे। अब मात्र आध घण्टा समय है। अब भी अगर अमल आ जाय ! जैसे भी हो, उसे इन कई दिनोका नीरव मनोमालिन्य मिटा ही डालना है। अमलको इस तरहसे विदा नही किया जा सकता। इन समवयस्क देवर-भौजाईमें जो हमेशासे मधुर सम्बन्ध चला आ रहा है, जिसमे अनेकों बार अड्डी-मेल, रूठना-मनाना, स्नेहके उपद्रव होते रहे है, और पवित्र सुखालोचनासे जकड़ा-हुआ जो चिर-छायामय लता-कुञ्ज

बन चुका है, अमल क्या उसे आज धूलमें मिलाकर बहुत दिनोके लिए बहुत दूर चला जायगा ? उसे जरा भी पश्चात्ताप न होगा ? उसकी जडमे क्या अन्तिम पानी भी न सीचेगा, उनके बहुत दिनोके देवर-भाभीके सम्बन्धका शेष अश्रु-जल ?

अब वह बचा-खुचा आध घण्टा भी बीतना चाहता है। ढीले बालोंको खोलकर उनमेसे एक गुच्छा हाथमें लेकर चारु उसे उंगलीपर लपेटने और खोलने लगी। आँसू रोके रुकते ही नही।

नौकरने आकर कहा—"बहूजी, बाबूजीके लिए डाभ निकालना है।"

चारुने आँचलसे चाभियोका गुच्छा खोलकर झन्न-से नौकरके आगे फेंक दिया, और नौकर अचम्भेमे आकर चाभी उठाकर चल दिया।

चारुकी छातीके भीतरसे कोई चीज ऊपरको आने लगी।

यथासमय भूपति हँसते-हुए खाने बैठे। चारु पंखा हाथमे लिये चौकेमें आकर देखती है कि अमल भी भूपतिके साथ आया है। चारुने उसके मुंहकी ओर नहीं देखा।

अमलने पूछा—"भाभी, मुझे बुलाया था ?"

चारुने कहा—"नही, अब जरूरत नही।"

अमल बोला—"तो मै जाऊँ, मुझे चीज-वस्त सब सम्हालनी हैं ?"

चारुने दीप्त दृष्टिसे एक बार अमलके मुंहकी ओर देखा; और फिर कहा—"जाओ।"

अमल चारुके मुंहकी ओर एक बार देखकर चला गया। भोजन करनेके बाद भूपति कुछ देर तक चारुके पास बैठा करते है। आज वे लेन-देन और हिसाबके झंझटमे बहुत ही व्यस्त थे, लिहाजा भीतर ज्यादा देर ठहर न सकनेके कारण, कुछ क्षुण्ण होकर बोले—"आज मै ज्यादा ठहर नही सकूंगा, चारु, बहुत झंझट है।"

चारुने कहा—"तो जाते क्यो नही !"

भूपतिने सोचा, चारु रूठ गई। बोले—"इसका मतलब यह नही कि अभी तुरत ही चला जाऊँ! थोडी देर आराम करके जाऊँगा।"

उन्होंने देखा कि चारु उदास हो गई है, इसलिए बहुत देर तक अनुतप्त चित्तसे बैठे रहे, पर किसी भी तरह बातचीतका सिलसिला न जमा सके। बहुत देर तक बातचीत करनेकी वृथा कोशिश करनेके बाद बोले—"अमल तो कल चला जायगा, कुछ दिन तुम्हे बिलकुल सूना-सूना-सा मालूम होगा।"

चारु बिना कुछ जवाब दिये ही कोई चीज लानेके लिए चटसे दूसरे कमरेमे चली गई। भूपतिने कुछ देर तक बाट देखी, फिर वे बाहर चले गये।

चारु आज अमलके चेहरेकी तरफ देखकर ताड गई थी कि इन्ही कई दिनोमे वह बहुत दुबला हो गया है, उसके चेहरेपर तरुणताकी वह स्फूर्ति बिलकुल ही नही रही। इससे चारुको खुशी भी हुई और वेदना भी। आसन्न विच्छेदने ही अमलको सुखा दिया है, इसमे चारुको सन्देह न रहा, किन्तु फिर भी अमलका ऐसा सलूक क्यो? क्यो वह दूर-दूर छिपा-छिपा फिरता है? विदाईके समयको क्यों वह इच्छापूर्वक ऐसा विरोध-कटु बनाता जा रहा है?

बिस्तरपर पडी सोचते-सोचते सहसा वह उठके बैठ गई। अचानक उसे मन्दाकी बात याद आ गई। सोचने लगी, 'शायद ऐसा हो कि मन्दासे अमलका प्रेम हो गया हो! मन्दाके चले जानेसे ही शायद अमल इस तरह,- छि! अमलका मन क्या ऐसा ओछा हो सकता है! इतना क्षुद्र नहीं है वह। इतना कलुषित हो सकता है भला कि विवाहित स्त्रीपर उसका मन हो! असम्भव है।' सन्देहको दूर करनेकी उसने काफी कोशिश की, पर सन्देह उसे जोरसे काटता ही रहा।

इसी तरह विदाका समय भी आ पहुँचा, पर बादल साफ नही हुए।

अमल आया। कम्पित कण्ठसे बोला—"भाभी, मेरे जानेका समय हो गया। अबसे तुम खुद भाई साहबकी देख-भाल करना। इस समय वे बडे संकटमेंसे गुजर रहे है। तुम्हारे सिवा उनके लिए और कही भी सान्त्वनाकी जगह नही। उनका पूरा ध्यान रखना, भाभी!"

भूपतिके उदास म्लान भावको देखकर अमलने उनकी भीतरी हालतका पता लगा लिया था। वह इन बातोंका खयाल करके कि 'भूपति किस तरह चुपचाप अपने दुःख और दुर्दशासे अकेले खडे लड रहे हैं, किसीसे

सहायता या सान्त्वना तक उन्हें नही मिली, और फिर भी अपने आश्रित पालित आत्मीय स्वजनोंको उन्होने इस प्रलय-संकटमें भी विचलित नही होने दिया', चुप रहा। उसके बाद उसने चारुकी बात सोची, फिर अपनी बात बिचारी। उसके कान् सुर्ख हो उठे। वह जोरसे कह उठा—"चूल्हेमे जाय 'असाढ़का चाँद' और 'अमावस्याका प्रकाश'! मै अगर वैरिस्टर होकर भाई साहबकी कुछ मदद कर सका, तभी मै पुरुष हूं।"

पिछली रातको सारी रात जागकर चारुने सोच रखा था कि विदा देते समय अमलको वह क्या कहेगी। सहास्य अभिमान और प्रसन्न उपेक्षासे माज-माजकर शब्दोंको उसने मन-ही-मन उज्ज्वल और धारदार बना लिया था। पर विदा करते समय चारुके मुंहसे कोई बात ही नही निकली। सिर्फ उसने इतना ही कहा—"चिट्ठी तो दिया करोगे न!"

अमलने जमीनसे सिर लगाकर चारुको प्रणाम किया।

चारु तेजीसे भाग गई वहाँसे। और कमरेमें जाकर भीतरसे किवाड़ बन्द कर लिये उसने।

१२

भूपतिने यथासमय वर्धमान जाकर अमलका ब्याह कर दिया, और उसके बाद अमलको विलायत रवाना करके वे घर लौट आये।

चारों तरफसे चोटे खा-खाकर विश्वास-परायण भूपतिके मनमें बाहरी संसारके प्रति एक तरहका वैराग्य-सा हो गया था। अब उन्हें सभा-समिति और मिलना-जुलना कुछ भी अच्छा नहीं लगता। वे सोचते, 'इन-सब बातोंमें मेने अपनेको ही ठगा। जीवनके सुखके दिन व्यर्थ ही बीत गये, जीवनका सार-भाग मेने घूरेमे बहा दिया!'

मन-ही-मन वे कहने लगे, 'जाने दो। अखबार जाता रहा, अच्छा ही हुआ। मुक्त हो गया मै।' संध्याके समय अँधेरेका सूत्रपात देखते ही पक्षी जैसे अपने नीड़ या घोंसलेको लौटता है, भूपति भी उसी तरह अपना बहुत दिनोका संचरण-क्षेत्र त्यागकर अन्तःपुरमे चारुके पास पहुँच गये।

मन-ही-मन उन्होने तय कर लिया कि 'बस, अब और कही नही जाना, यहीं मेरी स्थिति है। जिस अखबारी जहाजको लेकर मै दिन-भर खेला करता था वह डूब गया, अब घरकी शरण लू।'

भूपतिके मनमें शायद एक संस्कार-सा बैठा हुआ था कि 'अपनी स्त्रीपर किसीको अधिकार नही जमाना पड़ता, स्त्री ध्रुवताराकी तरह अपना दीप आप ही जलाये रखती है। वह दीप न तो हवासे बुझता है और न तेलकी ही परवाह करता है। बाहर जब टूटना-फूटना शुरू हुआ था, तब भूपतिके इतनी भी मनमे न आई कि भीतर अन्त पुरमे भी कही कोई दरार पडी है या नही, इस बातको परख देखें।

शामके वक्त भूपति वर्धमानसे लौटे। झटपट मुंह-हाथ धोकर जल्दीसे खा-पीकर निरचू हो गये। अमलके ब्याह और विलायत-यात्राका आद्योपान्त वर्णन सुननेके लिए चारु स्वभावत उत्सुक होगी, यह जानकर उन्होने आज भीतर जानेमे जरा भी देर नही की। सीधे सोनेके कमरेमे जाकर बिस्तरपर लेट गये, और हुक्केकी लम्बी नली मुंहमे लेकर धुआँ फेंकने लगे। किन्तु चारु अभी तक आई नही, शायद वह घरका काम-धन्धा कर रही होगी। इधर तमाखू जल जानेके बाद भूपतिको नींद आने लगी। क्षण-क्षणमे नीद उचट जाती तो वे चौककर उठ बैठते, और सोचते, अभी तक चारु आ क्यों नहीं रही है! अन्तमे भूपतिसे रहा नही गया। उन्होंने चारुको बुलवा भेजा।

चारुके आनेपर भूपतिने पूछा—"चारु, आज इतनी देर क्यो कर ली?"

चारुने कोई जवाबदेही न करके कहा—"हाँ, आज देर हो गई।"

चारुके आग्रहपूर्ण प्रश्नके लिए भूपति प्रतीक्षा करते रहे, पर चारुने कुछ पूछा ही नहीं। इससे भूपति कुछ दु खित हुए। सोचने लगे, 'तो क्या चारुका अमलसे स्नेह नही था? अमल जब तक यहाँ मौजूद था तब तक चारु उसके साथ खूब हँसती खेलती रही, और ज्यो ही वह चला गया त्यों ही उसके विषयमे ऐसी उदासीनता!' ऐसे विपरीत व्यवहारसे भूपतिके मनमे खटका-सा हो गया, वे सोचने लगे, 'तो क्या चारके हृदयमे गहराई नही

है ! वह सिर्फ हँसना-खेलना ही जानती है। स्नेह-प्रेम कुछ भी नही कर सकती ! स्त्रियोंके लिए ऐसा अनासक्तिका भाव तो अच्छा नहीं !'

चारु और अमलकी मित्रतासे भूपतिको खुशी होती थी। इन दोनोका लडकपन, अट्टी और मेल, सलाह और खेल, उनके लिए कुतूहलकी चीज थी। चारु जो अमलकी हमेशा खातिरदारी किया करती थी उससे चारुकी सुकोमल सहृदयताका परिचय पाकर भूपति मन-ही-मन प्रसन्न होते थे।

मगर आज, वे आश्चर्यके साथ सोचने लगे, यह सब-कुछ क्या ऊपरी बाते थीं ? हृदयमें क्या उनकी कही कोई जड ही नही !' और फिर उन्होंने सोचा, 'चारुके अगर हृदय नही, तो अब मे वहाँ जाकर कहाँ आश्रय लूंगा ?'

धीरे-धीरे परीक्षा करनेके लिए भूपतिने बात छेडी—"चारु, तुम थी तो अच्छी तरह ? तबीयत तो खराब नही रही ?"

चारुने संक्षेपमें उत्तर दिया—"नही। अच्छी ही थी।"

भूपतिने कहा—"अमलका व्याह तो हो गया –"

इतना कहकर वे चुप हो रहे। चारुने समयोचित कोई बात कहनेकी कोशिश की, पर उसके मुंहसे बात ही नही निकली। वह जडवत् चुप बैठी रही।

भूपतिका स्वभाव है कि वे किसी चीजको गौरके साथ नही देखते, किन्तु अमलकी विदाईका दु ख उनके अपने मनमे लगा हुआ था, इसलिए चारुकी उदासीनतासे उन्हे चोट पहुँची। उनकी इच्छा थी कि समवेदनासे व्यथित चारुके साथ अमलकी बातचीत करके हृदयका भार कुछ हलका कर लें।

भूपतिने कहा—"लडकी देखनेमे तो बहुत अच्छी है ! – क्या, चारु, सो रही हो क्या ?"

चारु बोली—"नही।"

भूपतिने कहा—"बेचारा अमल अकेला चला गया। जब उसे रेलमें बिठाया, तो वह बच्चेकी तरह रोने लगा। देखकर इस बुढापेमे भी मै अपने आँसू न रोक सका। डब्बेमे दो अंगरेज बैठे हुए थे · मरदोको रोते देख वे मजे लेने लगे थे !"

बत्ती बुझी-सी करके पलंगके अँधेरेमे पहले तो चारु करवट लेकर सो गई; उसके बाद अचानक जल्दीसे बिस्तरसे उठके बाहर चली गई। भूपतिने चौंककर पूछा—"तबीयत कुछ खराब है क्या, चारु?"

कोई उत्तर न पाकर वे भी उठ बैठे। पासके बरामदेसे दबे-हुए रोनेका शब्द सुनकर वे घबराये हुए बरामदेमें पहुँचे। देखा तो, चारु वहाँ जमीनपर औंधी पड़कर अपने रोनेको दबानेकी कोशिश कर रही है! चारुके ऐसे जबरदस्त शोकोच्छ्वासको देखकर भूपति दंग रह गये। सोचने लगे, 'चारुको क्या मैंने गलत समझा था? चारुका स्वाभाव इतना भीतरा कि मेरे पास भी हृदयकी कोई वेदना प्रकट नही करना चाहती! जिनकी ऐसी प्रकृति है उनका प्रेम गहरा होता है, और उनकी वेदना भी शायद बहुत ज्यादा होती है।' भूपतिने मन-ही-मन विचारकर यह तय कर लिया कि 'चारुका प्रेम साधारण स्त्रियोके समान बाहर देखनेमे नही आता।' उन्होने चारुके प्रेमका ऐसा उच्छ्वास पहले कभी नही देखा। आज वे खास तौरसे समझ गये कि चारुके प्रेमका गुप्त फैलाव भीतरकी ओर ही ज्यादा है। भूपति खुद भी बाहर प्रकट करनेमे अपटु हैं, और इसलिए अपनी स्त्रीकी प्रकृतिमें भी हृदयावेगकी गभीर अन्त शीलताका परिचय पाकर उन्हे एक तरहकी तृप्ति मालूम हुई।

भूपति चारुके पास बैठ गये, और कोई बात न करके धीरे-धीरे उसकी देहपर हाथ फेरने लगे। कैसे सान्त्वना दी जाती है, भूपति इस बातको नही जानते। वे इस बातको समझे ही नही कि शोकको जब कोई अँधेरेमे गला दबाकर मार डालना चाहता है तब वहाँ किसी साक्षीका बैठा रहना उसे अच्छा नही लगता।

१४

भूपतिने जब अपने अखबारके कामसे छुट्टी ली थी तब उन्होने अपने मनमें भविष्यका एक चित्र खींच लिया था। उन्होंने प्रतीज्ञा की थी कि वे किसी तरहकी दुराशा या दुश्चेष्टामे नही फँसेंगे। चारुको लेकर पढने-लिखने,

लाड़-प्यार करने, प्रेम और प्रतिदिनके गार्हस्थिक कर्तव्य पालन करनेमें जीवन विता देंगे। सोचा था कि 'जो गार्हस्थिक सुख सबसे सुलभ और साथ ही मधुर है, हमेशा हिलाने-डुलाने लायक और साथ ही पवित्र और निर्मल है, उसी सहज-प्राप्य सुखसे वे अपने जीवन-गृहके एक कोनेमें साध्य-दीप जलाकर एकान्त-शान्तिकी अवतारणा करेंगे।' कारण, हँसी-मजाक, गप-शप, आपसमे मनोरंजनके लिए छोटी-मोटी बाते करना, इन सबमे ज्यादा कोशिशकी जरूरत नहीं और सुख भी काफी है।

किन्तु, काम पड़नेपर देखा गया कि वह सुख इतना सहज नही है। जिसे कीमत देकर नही खरीदना पड़ता वह अगर अपने हाथके पास अपने-आप न मिले, तो उसे फिर कहींसे किसी तरह ढूँढ निकालना मुश्किल है।

आखिर भूपति किसी भी तरह चारुके साथ घनिष्ठता न जमा सके। इसके लिए उन्होंने अपनेको ही दोषी ठहराया। सोचा कि बारह साल तक लगातार अखबारमे लिखते-लिखते वे, स्त्रीके साथ कैसे बातचीत या गप-शप की जाती है, इस विद्याको ही भूल गये हैं। अब साध्य-दीपके जलते ही भूपति आग्रहके साथ घर आ जाते हैं। वे दो-एक बात करते हैं, और चारु भी दो-एक बात करती है, किन्तु उसके बाद उनकी कुछ समझ ही मे नही आता कि क्या करें। अपनी इस असमर्थतासे स्त्रीके सामने वे लज्जित होते रहते है। हाय-हाय, बेचारने अपनी स्त्रीके साथ गप-शप करना जितना सहज समझ रखा था, उस मूढ़के लिए वह उतना ही कठिन निकला! इससे तो सभामे व्याख्यान देना कहीं सहज है।

संध्याके बादके जिस समयको उन्होने हँसी-मजाक और लाड-प्यारसे रमणीय बना डालनेकी कल्पना की थी उस समयका काटना अब उनके लिए एक समस्या-सी हो गई। कुछ देर तक कोशिशके बाद वे मौन रहकर सोचते कि उठकर चल दें, पर उठके चले आनेसे चारु क्या सोचेगी, यह सोचकर उनसे उठा भी नही जाता। कहते, "चारु, ताश खेलोगी?" चारु और कोई उपाय न देखकर कहती, "हाँ।" और इच्छा न होते हुए भी ताश उठा

लाती , और खेलने लगती । किन्तु अन्तमे काफी गलतियाँ करके हार जाती । उस खेलमे किसीको भी कोई आनन्द नही आता ।

भूपतिने बहुत सोच-विचारकर एक दिन चारुसे पूछा—"चारु, मन्दाको बुला लिया जाय तो कैसा रहे ? तुम बिलकुल अकेली पड़ गई हो ।"

चारु मन्दाका नाम सुनते ही भक-से जल उठी । बोली—"नही, मन्दाकी मुझे जरूरत नही ।"

भूपति हँस दिये , और मन-ही-मन खुश भी हुए । सोचने लगे, सती-साध्वी स्त्रियाँ जहाँ सती-धर्मका जरा भी व्यतिक्रम देखती हैं वहाँ धीरज नही रख सकतीं !

विद्वेषके पहले धक्केको सम्हालकर चारुने सोचा, 'मन्दा रहेगी तो शायद भूपतिको वह बहुत-कुछ प्रसन्न रख सकेगी ।' इस बातको समझकर वह दु खित हो रही थी कि पति उससे मानसिक सुख चाहते हैं, और उससे वह किसी भी तरह देते नही बनता । उसके पति संसारकी और-सब बातोंको छोड़कर एकमात्र उसीसे अपने जीवनका सारा आनन्द आकर्षित करनेकी कोशिश कर रहे हैं – इस एकाग्र चेष्टाको देखकर और अपने हृदयकी दीनता अनुभव करके चारु यकायक डर-सी गई । सोचने लगी, 'इस तरहसे कैसे और कब तक दिन कटेंगे ? वे और-किसी चीजका सहारा क्यों नहीं लेते ? और-कोई अखबार क्यों नहीं निकाल देते ?' असलमें पतिके मनोरञ्जनके लिए अब तक उसे कोई भी अभ्यास नही करना पड़ा, पतिने उससे कभी किसी तरहकी सेवा नही चाही, किसी तरहका सुख भी नहीं चाहा , और न उन्होने अपने लिए सब तरहसे उसे कभी आवश्यक ही बनाया है । आज वे सहसा अपने जीवनकी सम्पूर्ण आवश्यकताएँ चारुसे ही पूरी करना चाहते हैं ! और ऐसी हालतमें, चारुको अब कही कुछ सुझाई नही देता । उसके पतिको क्या चाहिए, क्या होनेसे उन्हें तृप्ति होगी, इस बातको वह ठीक तौरसे जानती नहीं , और जान भी जाय तो अब पूरा करना उसके बूतेसे बाहरकी बात है ।

भूपति अगर धीरे-धीरे आगे बढ़ते, तो चारुके लिए शायद इतनी कठिनाई नहीं होती , किन्तु सहसा, एक रातमें देवालिया होकर उन्होंने जो रीता

भिक्षापात्र चारुके आगे बढा दिया, उससे वह बड़े पसोपेशमें पड गई।

अन्तमे चारुने कहा—"अच्छा, मन्दाको बुलवा लो। उसके रहनेसे तुम्हारी सेवा-टहलमें बहुत-कुछ सहूलियत हो जायगी।"

भूपतिने हँसकर कहा—"मेरी सेवा-टहल! मेरे लिए और-किसीकी कोई जरूरत नही, चारु!"

और वे दु:खित होकर सोचने लगे, 'मै बडा नीरस आदमी हूं, चारुको किसी तरह मै सुखी नही कर पाता।'

अन्तमे बहुत सोच-विचारकर अबकी बार उन्होने साहित्य-चर्चामें मन लगाया। मित्रोमेंसे कोई उनके घर आता, तो आश्चर्यके साथ देखता कि भूपति टेनिसन, बायरन, बंकिमचन्द्र आदिकी रचनाओंमे गले तक डूबे हुए हैं! भूपतिके इस अकाल-काव्यानुरागको देखकर उनके मित्र खूब मजाक उडाने लगे। भूपति हँसके कहते—"बाँसमे भी फूल लगते हैं, पर कब लगते हैं इसका कोई ठीक नहीं!"

एक दिन शामके वक्त भूपतिने अपने कमरेकी बडी बत्ती जलाकर, बहुत ही संकोचके साथ, चारुसे कहा—"एक रचना पढके सुनाऊँ?"

चारुने कहा—"सुनाओ न!"

भूपतिने कहा—"क्या सुनाऊँ?"

चारु बोली—"जो तुम्हारी इच्छा हो।"

स्त्रीकी तरफसे ज्यादा आग्रह न देखकर भूपतिका मन जरा दहल-सा गया। फिर भी साहस लाकर बोले—"टेनिसनकी किताबसे तरजुमा करके तुम्हें सुनाता हूं।"

चारुने कहा—"सुनाओ।"

किन्तु, हाय री विधि, सब मिट्टी हो गया। संकोच और निरुत्साहसे भूपतिका पढ़ना अटकने लगा, समझानेके लिए ठीक-ठीक शब्द उपस्थित नही हुए। और अन्तमें चारुकी शून्य दृष्टि देखकर वे समझ गये कि 'चारुका मन नही लग रहा है।' उस दीपालोकित छोटेसे कमरेमे, उस रातके एकान्त अवकाशमें वैसा भराव आया ही नही जैसा आना चाहिए था।

भूपतिसे और भी दो-एक बार ऐसी गलतियाँ हुई। और अन्तमे फिर उन्होने स्त्रीके साथ साहित्य-चर्चाकी कोशिश करना छोड ही दिया।

१५

कोई जबरदस्त चोट लगनेसे जैसे स्नायु सुन्न पड़ जाती है और शुरू-शुरूमे दर्द मालूम ही नही होता, ठीक उसी तरह शुरू-शुरूमे अमलका अभाव चारुको अच्छी तरह मालूम ही नही हुआ।

अन्तमें, ज्यों-ज्यो दिन बीतने लगे त्यो-त्यो अमलके अभावसे जीवनकी शून्यताकी गहराई क्रमश बढती ही गई। और इस शून्यताका पता लगते ही चारु हतबुद्धि-सी हो गई। सोचने लगी, हाय हाय, सुशीतल कुंज-वनसे निकलकर वह सहसा यहाँ किस मरुभूमिमे आ गई! दिनपर दिन बीतते जाते हैं, और मरुभूमिका विस्तार बढता ही जाता है। इस मरुभूमिका पहले उसे जरा भी ज्ञान न था।

नींद उचटते ही सहसा उसकी छातीमे धक-सी हो जाती। याद आ जाती, अमल नही है! सवेरे जब वह बरामदेमे पान लगाने बैठती है तो क्षण-क्षणमे मालूम होता रहता है कि अमल पीछेसे नहीं आयेगा! कभी-कभी अन्यमनस्क होकर वह ढेरके ढेर पान लगा डालती और फिर सहसा याद उठ आती कि ज्यादा पान खानेवाला आदमी तो है ही नही! ज्योंही भण्डार-घरमे पैर रखती, उसे याद आ जाता कि अमलके लिए कलेवा नही निकालना है! मनका अधैर्य अन्त पुरके सीमान्तमे जाकर उसे याद दिला देता, आज अमल कालेजसे नही आयेगा! किसी नई पुस्तककी, किसी नई रचनाकी, किसी नई खबर या नये मजाककी किसीसे आशा ही नही करना है उसे! न कोई सिलाईका काम करना है, न कोई लेख लिखना है, न कोई शौकीनीकी चीज ही खरीदकर रखना है! कैसी शून्यता है जिसका अन्त ही नहीं!

चारु अपने इस असह्य कष्ट और चाचल्यसे खुद परेशान है। मनोवेदना से लगातार पीडित होते-होते आखिर उसे डर मालूम होने लगा। बार-बार वह अपने-आपसे पूछने लगी, 'क्यो, इतना दु ख क्यों हो रहा है? अमल

मेरा ऐसा क्या लगता है जो उसके लिए इतना कष्ट सहूँ ? मुझे हो क्या गया ? इतने दिनो बाद मुझे यह क्या हो गया ? नौकर-नौकरानी और रास्तेके मजूर तक निश्चिन्त होकर घूमते-फिरते हैं, और मेरा ऐसा हाल ! भगवानने मुझे ऐसी आफतमे क्यो डाल दिया ?'

चारु अपने मनसे बार-बार प्रश्न किया करती और आश्चर्यमे उलझती रहती ; किन्तु उसके दु खमें जरा भी कमी नही आती । अमलकी स्मृति उसके अन्तरंग और बहिरंगमे ऐसी घुल-मिल गई कि कहीं भी उसे भागे राह नहीं मिलती ।

पतिका फर्ज था कि अमलकी स्मृतिके आक्रमणसे चारुकी रक्षा करता , किन्तु ऐसा न करके, बेचारा विच्छेद-व्यथित स्नेहशील मूढ पति बार-बार उसे अमलकी ही बात याद दिला देता है ।

अन्तमें चारुने बिलकुल ही पतवार छोड़ दी । अपनेसे लडना उसने बन्द कर दिया , और हार मानकर अपनी अवस्थाको बिना विरोधके स्वीकार कर लिया । अमलकी स्मृतिको उसने आदरके साथ हृदयमें प्रतिष्ठित कर लिया ।

होते-होते ऐसा हो गया कि चारुके लिए एकाग्र-चित्तसे अमलका ध्यान करना अपने मनमे छिपे-हुए गर्वका विषय हो गया , मानो अमलकी स्मृति ही उसके जीवनका श्रेष्ठ गर्व हो !

घरके काम-धन्धेसे फुरसत पानेके बाद उसने इसके लिए एक समय निश्चित कर लिया । उस समयमें वह एकान्त कमरेमे, दरवाजा बन्द करके अमलके साथ अपने जीवनकी प्रत्येक घटनाकी याद किया करती । कभी तकियेपर औंधी पड़कर बार-बार कहती रहती, 'अमल, अमल, अमल !' और समुद्र पारसे मानो उसके कानमें उत्तर आता, 'भाभी, भाभी, भाभी !' चारु अपनी डबडबाई-हुई आँखें मीचकर कहती, "अमल, तुम गुस्सा होकर चले क्यो गये ? मैने किसी दिन कोई दोष नहीं किया । तुम अगर अच्छी तरह हँसी-खुशीसे विदा होकर जाते, तो शायद मै इतना दु ख नही पाती ।" अमलके सामने जैसे वह उससे बात करती, ठीक उसी ढंगसे वह ये शब्द

कहती। कहती, 'अमल, मै तुम्हें एक दिनके लिए भी नहीं भूली। एक दिन भी नहीं, एक क्षण भी नहीं! मेरे जीवनमे श्रेष्ठ वस्तुएँ सव तुम्हीने पनपाई-खिलाई हैं। अपने जीवनके सार-भागसे प्रतिदिन मे तुम्हारी पूजा किया करूँगी।'

इस तरह चारुने अपनी घर-गृहस्थी, अपने समस्त कर्तव्योके अन्तस्तरके नीचे सुरंग खोदकर, उस निरालोक निस्तब्ध अन्धकारमे अश्रुमालासे सुसज्जित शोकका एक गुप्त मन्दिर वना लिया। वहाँ उसके पति या संसारके और किसी भी आदमीको जानेका अधिकार नही। वह स्थान जितना गोपनतम है उतना ही गभीरतम और उतना ही प्रियतम है। उसी द्वारसे वह अपने मन्दिरमे संसारके सम्पूर्ण छद्मवेशको त्यागकर अपने अनावृत आत्म स्वरूपमे प्रवेश करती और वहाँसे वाहर निकालकर, फिर नकाव पहनकर संसारके हास्यालाप और काम-धन्धेकी रंगभूमिपर आ जाती।

१६

इस तरह अपने मनके साथ द्वन्द्व-विवाद छोड़कर चारुने अपने गभीर विपादमें भी एक तरहकी शान्ति प्राप्त कर ली, और साथ ही एकनिष्ठ होकर अपने पतिकी भी वह भक्ति और सेवा करने लगी। भूपति जव सोते रहते तव वह धीरे-धीरे उनके पैरोके पास अपना सिर रखकर उनकी चरण-रज अपने माथेसे लगाती। पतिकी सेवा-टहल और घर-गृहस्थीके काममें वह जरा भी त्रुटि नहीं करती। आश्रित और प्रतिपालित व्यक्तियोंके प्रति किसी तरहकी उपेक्षा होनेपर भूपति दु खित होते हैं, इस वातका खयाल रखकर वह उस काममे कतई त्रुटि नही होने देती। इस तरह सव काम-काज पूरे करके वह भूपतिकी जूठी थालीका प्रसाद खाकर दिन विता देती।

इस सेवा और जतनसे भग्नस्वास्थ्य और भग्नश्री भूपतिको मानो फिरसे नवयौवन वापस मिल गया। स्त्रीके साथ पहले मानो उनका नवविवाह नहीं हुआ था, मानो अभी हुआ है। उन्होंने साज-सजावट और हास्य-परिहाससे विकसित होकर दुनियादारीकी सम्पूर्ण दुश्चिन्ताओंको ढकेलकर एक किनारे

कर दिया। बीमारीसे उठनेके बाद जैसे भूख बढ जाती है और शरीरमें भोग-शक्तिके विकासकी सचेतनता अनुभव होने लगती है, भूपतिके मनमें भी उसी तरहके एक अपूर्व और प्रबल भावावेशका संचार होने लगा। वे मित्रोसे, यहाँ तक कि चारुसे भी छिपाकर कविता पढने लगे। मन-ही-मन बोले, 'अखबार बन्द करके और बडी-बडी तकलीफें उठाकर इतने दिनो बाद अब मुझे स्त्री मिली है!'

एक दिन भूपतिने चारुसे कहा—"चारु, आजकल तुमने लिखना क्यों छोड दिया?"

चारुने कहा—"मै तो बडा लिखना जानती हूँ!"

भूपतिने कहा—"सच कहता हूँ, चारु, मै तो आजकलके किसी भी लेखकको तुम्हारी जैसी भाषा लिखते नही देखता! 'विश्वबन्धु' ने जो लिखा था, मेरा मत भी ठीक वही है।"

चारु बोली—"बस, रहने भी दो!"

भूपति "यह देखो न" कहकर 'सरोरुह' का एक अंक निकालकर चारु और अमलकी भाषाकी तुलना करने लगे। चारुका चेहरा सुर्ख हो उठा; उसने भूपतिके हाथसे अखबार छीनकर आँचलके भीतर छिपा लिया।

भूपतिने मन-ही-मन सोचा, 'जब तक लिखनेका साथी कोई न हो तब तक लिखना होता ही नही। ठहरो, मुझे भी लिखनेका अभ्यास करना होगा! फिर धीरे-धीरे चारुको भी लिखनेका उत्साह होने लगेगा।'

भूपति चारुसे छिपाकर लिखनेका अभ्यास करने लगे। कोश देखकर, बार-बार काट-कूटकर, बार-बार नकल करके, वे अपने बेकार-अवस्थाके दिन बिताने लगे। इतने कष्ट और इतनी कोशिशोसे उन्हे लिखना पड रहा है, लिहाजा अपनी रचनाओपर क्रमश उनका विश्वास और ममत्व बढने लगा।

अन्तमे एक दिन उन्होंने अपनी रचना, और-किसीसे नकल करवाकर, चारुके हाथमें दी, और बोले—"मेरे एक मित्रने हाल ही मे लिखना शुरु किया है। मै तो कुछ समझता नही, तुम एक बार पढके देखो तो सही, कैसा लिखा है!"

चारुके हाथमे कापी देकर भूपति वाहर चले गये। सरल-चित्त भूपतिके इस छलको चारु फौरन ताड गई।

चारुने उन्हे पढा, और लिखनेकी शैली और विषय देखकर जरा हँस दी। हाय, अपने पतिकी भक्ति करनेके लिए वह इतनी तैयारियाँ कर रही है, फिर क्यो वे इतना लडकपन करके उसके पूजाके अर्घ्यको बखेर देते हैं ? चारुके मुँहसे वाहवाही सुननेके लिए क्यो इतनी कोशिश करते हैं ? वे अगर कुछ भी न करते, चारुके मनको अपनी तरफ आकर्षित करनेके लिए अगर वे सर्वदा प्रयास न करते रहते, तो पतिकी पूजा करना चारुके लिए सहज-साध्य होता। चारुकी वडी इच्छा थी कि भूपति किसी भी अंशमें अपनेको उससे छोटा न करें।

चारुने कापी मोडकर तकियाके नीचे रख ली, और उसपर कोहनी टेक कर दूर देखती हुई वह बहुत देर तक न-जाने क्या-क्या सोचती रही! अमल भी उसे अपनी नई रचना पढनेके लिए दिया करता था!

शामको उत्सुक होकर भूपति अपने कमरेके सामनेवाले वरामदेमें रखे-हुए फूलके टब देखने लगे; चारुसे कोई वात पूछनेकी उन्हे हिम्मत नही हुई। अन्तमे चारुने खुद ही कहा—"यह क्या तुम्हारे मित्रकी पहली रचना है ?"

भूपतिने कहा—"हाँ।"

चारुने कहा—"अच्छा लिखा है! पहली रचना मालूम ही नही होती!"

भूपति अत्यन्त प्रसन्न होकर सोचने लगे, अब बेनामी रचनापर अपना नाम कैसे जारी किया जाय ?

भूपतिकी कापियाँ बहुत जल्दी-जल्दी भरने लगी। और नाम प्रकट होनेमे भी देर न लगी।

१७

विलायतसे चिट्ठी आनेका कौनसा दिन है, इस वातका चारु हमेशा ध्यान रखती। पहले अदनसे भूपतिके नाम एक चिट्ठी आई। उसमे अमलने भाभीको प्रणाम लिखा। स्विजसे भी अमलकी चिट्ठी आई, उसमें भी उसने

भाभीको प्रणाम लिखा । माल्टासे जो चिट्ठी आई उसमे भी भाभीके लिए प्रणाम लिखा आया ।

परन्तु चारुके नाम अमलकी एक भी चिट्ठी नही आई । आखिर चारुने भूपतिसे सब चिट्ठियाँ लेकर उन्हें बार-बार उलट-पुलटकर पढ देखा । प्रणामके सिवा उनमें और-कहीं भी कोई आभास तक उसके लिए नही था ।

इधर कुछ दिनोसे चारुने जिस शान्त विषादके चँदोएके नीचे आश्रय लिया था, अमलकी उपेक्षासे वह बिलकुल छिन्न-भिन्न हो गया । उसके हृदयके भीतर फिर एक तरहका घात-प्रतिघात शुरू हो गया । और उसकी गार्हस्थिक कर्तव्य-स्थितिमे फिर भूकम्पकी-सी हलचल जारी हो गई ।

भूपतिने फिर एक दिन आधी रातको उठकर देखा कि चारु बिस्तरपर नही है ! इधर-उधर देखनेपर मालूम हुआ कि वह दक्षिणकी खुली खिड़कीके पास बैठी है । भूपतिको देखते ही चारु चटसे उठकर कहने लगी—"आज बडी गरम है, इसीसे जरा हवामे आ बैठी हूं ।"

भूपति उद्विग्न हो उठे ; और उन्होंने पलंगके ऊपर पंखा खिचवानेका इन्तजाम करा दिया , और साथ ही चारुके स्वास्थ्य बिगड़नेकी आशङ्कासे हमेशा उसपर दृष्टि रखने लगे ।

चारु हँसकर कहा करती, "मै बड़े मजेमें हूँ, क्यों तुम झूठमूठको फिकर किया करते हो !" इतनी-सी हँसी खिलानेके लिए चारुको अपने हृदयकी सारी शक्ति लगा देनी पड़ती ।

अमल विलायत पहुंच गया । चारुने सोचा था कि रास्तेमे उसके लिए अलग चिट्ठी लिखनेका शायद काफी मौका नही मिला होगा , विलायत पहुंचकर वह उसे लम्बी चिट्ठी देगा । अमल तो पहुँच गया, पर लम्बी चिट्ठी नही आई ।

प्रत्येक विलायती डाक आनेके दिन चारु अपने समस्त काम-काज और बातचीतके भीतर-ही-भीतर फड़फडाती रहती । कही भूपति यह न कह दें कि तुम्हारे नामकी कोई चिट्ठी नही, इस आशंकासे भूपतिसे चिट्ठीके बारेमे कुछ पूछनेकी भी उसे हिम्मत नही पडती ।

एक दिन, चारुके मनकी ऐसी हालतमें, विलायती डाक आनेके दिन, भूपति धीरे-धीरे भीतर आये, और मन्द-मन्द मुसकराते हुए बोले—"एक चीज लाया हूं, देखोगी ?"

चारु चौंक पड़ी, और अत्यन्त व्यस्तताके साथ बोली—"कहाँ है ?"

भूपति मजाक करते रहे, और दिखाना नही चाहा।

चारुने अधीर होकर भूपतिके दुपट्टेके भीतरसे वांछित वस्तु छीन लेनेकी कोशिश की। वह मन-ही-मन सोचने लगी, 'सवेरेसे ही मेरा मन बोल रहा है कि आज मेरी चिट्ठी आयेगी ही, सो क्या कभी व्यर्थ हो सकता है!'

भूपतिको इस मजाकसे बड़ा आनन्द आया, वे उसे चालू रखनेके लिए पलंगके चारों तरफ घूमने लगे और चारु उनका पीछा करने लगी।

आखिर चारु नाराज होकर पलगपर बैठ गई, और उसकी आँखोमें आँसू भर आये।

चारुके इस जबरदस्त आग्रहसे भूपति बहुत ही खुश हुए, और अन्तमे दुपट्टेके भीतरसे अपनी रचनाकी कापी निकालकर चटसे चारुकी गोदमें रखकर बोले—"गुस्सा मत होओ, यह लो!"

१८

यद्यपि अमलने भूपतिको पहली चिट्ठीमे लिख दिया था कि पढने-लिखनेमें लगे रहनेसे बहुत दिनो तक उसे चिट्ठी लिखनेका समय नही मिलेगा, किन्तु फिर भी दूसरी डाकसे उसकी चिट्ठी न आनेसे सारी घर-गृहस्थी चारुके लिए कंटक-शय्या हो उठी।

शामके बाद बातों-ही-बातोंमे चारुने बहुत ही उदास होकर शान्तस्वरमें अपने पतिसे कहा—"विलायतको एक तार देकर खबर मँगा लो न कि अमल कैसे है!"

भूपतिने कहा—"दो हफ्ते पहले उसकी चिट्ठी आ चुकी है कि अब वह पढने-लिखनेमे व्यस्त रहेगा।"

चारु—"अच्छा, तो जाने दो। मैने सोचा था कि आखिर परदेश है, शायद बीमार-ईमार पड गये हों! कोई ठीक थोडे ही है!"

भूपति—"सो बात नही, बीमार पडता तो खबर भिजवा देता। तार भेजनेमे खरचा भी तो कम नही!"

चारु—"खरचा बहुत ज्यादा लगता है क्या? मै समझती थी कि ज्यादासे ज्यादा एक या दो रुपया लगता होगा।"

भूपति—"अरे, नहीं, करीब-करीब सौ रुपयेका धक्का समझो!"

चारु—"तब तो मुश्किल ही है।"

दो दिन बाद चारुने भूपतिसे कहा—"मेरी बहन अभी चुंचड़ामे है, तुम वहाँ जाकर उसकी खबर-सुध ले आओ तो बहुत अच्छा हो।"

भूपति—"क्यो, वे बीमार हैं क्या?"

चारु—"नहीं, बीमार तो नही है। तुम तो जानते हो, तुम्हारे जानेसे उनलोगोको कितनी खुशी होती है!"

भूपति चारुके अनुरोधसे घोडा-गाडीपर सवार होकर हावडा स्टेशन चल दिये। रास्तेमे बैलगाडियोकी कतार लगी हुई थी, जिससे उनकी गाडी बहुत देर तक रुकी रही।

इतनेमे, एक परिचित टेलिग्राफ-पियोन उधरसे जा रहा था, उसने भूपतिको देखकर उनके नामका एक टेलिग्राफ उनके हाथमे दिया। विलायती टेलिग्राफ देखकर भूपति एकाएक डर गये। सोचा, अमल शायद बीमार पड़ गया। डरते-डरते उन्होने तार खोलकर देखा, उसमें लिखा था—"मै सकुशल हूं।"

इसके क्या मानी? उलट-पुलटके देखा तो मालूम हुआ, वह प्री-पेड टेलिग्रामका जवाब है!

हवडा जाना नही हुआ। गाडी वापस लौटाकर भूपतिने घर आकर स्त्रीके हाथमें तार दे दिया। भूपतिके हाथमें तार देखते ही चारुका चेहरा सफेद-फक पड गया।

भूपतिने कहा—"इसके मानी कुछ समझमें नही आये!"

अनुसन्धान करनेके बाद भूपतिको उसके मानी समझमें आ गये। चारुने अपना एक गहना गिरवी रखकर उन रुपयोंसे जवाबी-तार भेजा था।

भूपति सोचने लगे, 'इतना करनेकी कोई जरूरत ही नहीं थी। मुझसे जरा ज्यादा अनुरोध करती, तो मैं ही तार भेज देता। नौकरके हाथ इस तरह छिपाकर बाजारमें गहना गिरवी रखने भेजना, –यह तो कोई अच्छी बात नहीं!'

रह-रहकर भूपतिके मनमें सिर्फ एक ही प्रश्न उठने लगा, 'चारुने क्यों इतनी ज्यादती की?' एक अस्पष्ट सन्देह अज्ञात-रूपसे उनके हृदयमें चुभने लगा। उस सन्देहको भूपतिने प्रत्यक्षरूपसे देखना नहीं चाहा, बल्कि भूले रहनेकी कोशिश की, पर वेदनाने किसी भी तरह उनका पीछा नहीं छोड़ा।

१६

अमलकी तबीयत अच्छी है, फिर भी वह चिट्ठी नहीं लिखता! आखिर ऐसी कठोरताके साथ सम्बन्ध-विच्छेद क्यों हुआ? चारुका जी चाहता है कि वह खुद जाकर एक बार रूबरू इस प्रश्नका उत्तर ले आवे। किन्तु बीचमें समुद्र है, पार होनेका कोई रास्ता नहीं। निष्ठुर विच्छेद है, निरुपाय विच्छेद है, सब प्रश्न और समस्त प्रतिकारोंके बाहरका है यह विच्छेद!

चारु अपनेको सम्हालकर खड़ी न रख सकी। घरका काम-काज पड़ा रहने लगा, सभी कामोंमें गलती होने लगी, नौकर-चाकर चोरी करने लगे, उसके दीन-भावको देखकर सब कानाफूसी करने लगे, और इतना सब-कुछ होते हुए भी उसे होश नहीं आया!

होते-होते ऐसा हो गया कि अचानक वह चौंक-चौंक उठती, बात करते-करते जरा रो आनेके लिए उसे उठकर एकान्तमें जाना पड़ता, यहाँ तक कि अमलका जिक्र सुनते ही उसका चेहरा फक पड़ जाता।

आखिर, भूपतिसे यह सब-कुछ छिपा न रहा। और जो बात उन्होंने एक क्षणके लिए भी कभी नहीं सोची थी वह भी सोचनी पड़ी। संसार उनके लिए बिलकुल शुष्क और जीर्ण वृद्ध-सा हो गया।

बीचमें जो कुछ दिनके लिए आनन्दके उन्मेषमें भूपति अन्धे हो गये थे, उन दिनोंकी स्मृति उन्हें लज्जित करने लगी। जो अनभिज्ञ बानर जवाहर नहीं पहचानता उसे झूठा पत्थर देकर क्या इसी तरह ठगना चाहिए ?'

चारुकी जिन बातोंसे, जिस प्रेम और व्यवहारसे, भूपति फूले-फूले फिरते थे, वे सब बातें याद आ-आकर उन्हें "मूढ़, मूढ़, मूढ़" कह-कहके बेंत मारने लगीं।

अन्तमें, जब उन्हें अपनी बहुत परिश्रमसे लिखी-हुई रचनाओंका खयाल आया, तो उन्होंने धरणीको विदीर्ण होनेके लिए कहा। अंकुश-ताड़ित हस्तीकी तरह वे जल्दी-जल्दी चारुके पास पहुँचे, और बोले—"मेरी वे कापियाँ कहाँ हैं ?"

चारुने कहा—"मेरे पास रखी हैं।"

भूपतिने कहा—"ला दो उन्हें।"

चारु उस समय भूपतिके लिए मटरकी कचौड़ियाँ बना रही थी। बोली—"अभी तुरत चाहिए ?"

भूपतिने कहा—"हाँ, अभी तुरत।"

चारु कड़ाही उतारकर आलमारीसे उनकी कापियाँ और कागज वगैरह सब निकाल लाई।

भूपतिने अधीरताके साथ उसके हाथसे कापियाँ छीनकर चूल्हेमें डाल दीं।

चारु जल्दीसे उन्हें निकालनेकी कोशिश करती हुई बोली—"यह तुमने क्या किया !"

भूपतिने उसका हाथ पकड़कर गरजते हुए कहा—"रहने दो !"

चारु आश्चर्य-चकित होकर खड़ी रही। भूपतिकी तमाम रचनाएँ देखते-देखते जलकर भस्म हो गईं।

चारु सब समझ गई। उसने एक गहरी साँस ली; और कचौड़ी बनाना छोड़कर धीरे-धीरे अन्यत्र चली गई।

चारुके सामने अपनी रचनाएँ नष्ट कर डालनेका भूपतिका इरादा नहीं था। किन्तु, ठीक सामने ही आग जल रही थी, उसे देखकर कैसा-तो उनके

सरपर खून सवार हो गया ! भूपति अपनेको सम्हाल न सके , और प्रवंचित नासमझके सम्पूर्ण उद्यमको उन्होने प्रवंचना-कारिणीके सामने ही आगमे डाल दिया ।

जब सब जलकर भस्म हो गया तब भूपतिकी आकस्मिक उग्रता कुछ शान्त हुई ; और तब उन्हें खयाल आया कि चारु अपने अपराधोंका बोझ लेकर कैसे गभीर विषादसे चुपचाप सिर झुकाये चली गई ! और फिर जो सामने देखा, तो वे सोचने लगे, 'मुझे मटरकी कचौड़ियाँ बहुत अच्छी लगती हैं, इसीसे चारु अपने हाथसे इतने जतनसे कचौड़ियाँ बना रही थी ।'

भूपति बरामदेमे जाकर रेलिंगपर झुककर खडे हो गये । मन-ही-मन सोचने लगे, 'मेरे लिए चारुकी ये जो अश्रान्त चेष्टाएँ हैं, ये जो वंचनाएँ हैं, इससे बढकर करुणाजनक बात संसारमे और क्या होगी ? ये सब वंचनाएँ तो सिर्फ छलना-कारिणीकी हेय छलना-मात्र नहीं ! हाय, इन छलनाओंके लिए अभागिनीको अपने विदीर्ण हृदयकी क्षत-यन्त्रणाको चौगुना बढाकर, इतने दिनोसे, क्षण-क्षणमे अपने हृत्पिण्डसे कितना खून निचोडकर निकालना पडा होगा !' फिर वे मन-ही-मन कहने लगे, "हाय री अबला, हाय री दु खिनी नारी ! इतना करनेकी क्या जरूरत थी ? मुझे इन सब बातोंकी कतई जरूरत नहीं थी । इतने दिनोंसे प्रेम न मिलनेपर भी, 'नहीं मिला' कहकर मैने कभी कोई शिकायत नहीं की । मेरे दिन तो सिर्फ लेख लिखने और प्रूफ देखनेमे ही बीत रहे थे । फिर मेरे लिए इतनी कोशिश करनेकी क्या जरूरत ही थी !"

अन्तमें भूपतिने अपने जीवनको चारुके जीवनसे दूर हटाकर – डाक्टर जैसे असाध्य-रोग-ग्रस्त रोगीको देखता है वैसे – नि.सम्पर्क व्यक्तिकी तरह चारुको दूरसे देखने लगे । देखने लगे, उस क्षीणशक्ति नारीका हृदय कैसे प्रबल-संसारके द्वारा चारो तरफसे आक्रान्त हो रहा है ! ऐसा कोई आदमी नही जिसके आगे वह अपनी सब बातें कह सके , ऐसी कोई बात नहीं जो शब्दोंमें कही जा सके , ऐसी कोई जगह नही जहाँ वह सम्पूर्ण हृदय खोलकर हाहाकार करके अपना हृदय हलका कर सके , फिर भी उसे इस प्रतिदिन

पुंजीभूत होनेवाले अप्रकाश्य अपरिहार्य अप्रतिविधेय दु ख-भारको वहन करते हुए, सहज-स्वाभाविक आदमियोंके समान ही, अपनी स्वस्थ-चित्त पडोसिनोंकी तरह ही, अपनी घर-गृहस्थीका काम-धन्धा करना पड रहा है।

भूपतिने अपने सोनेके कमरेमे जाकर देखा, जंगलेकी छड पकड़े चारु सूखी आँखोंसे एकटक बाहरकी ओर देख रही है। धीरेसे वे उसके पीछे जाकर खडे हो गये, कुछ बोले नही, सिर्फ चारुके माथेपर हाथ रखकर रह गये।

२०

एक दिन भूपति अपनी बैठकमें बैठे कुछ काम कर रहे थे। इतनेमें उनकी मित्र-मण्डली आ पहुँची। मित्रोंने पूछा—"बात क्या है, भई! आज इतने व्यस्त कैसे?"

भूपतिने कहा—"अखबार—"

एक मित्र बीच ही मे बोल उठे—"फिर अखबार! अपना घर-द्वार सब-कुछ अखबारकी रद्दीमे मोडकर गगामे बहा देनेका ही निश्चय कर लिया है क्या?"

भूपति—"नही नही, मे खुद नही निकाल रहा।"

मित्र—"तो?"

भूपति—"मैसूरसे एक नया अखबार निकलनेवाला है, मुझे उसका सम्पादक बनाया गया है।"

मित्र—"घर-द्वार सब छोड-छाडकर एकदम मैसूर चले जाओगे! चारुलता भी साथ जायेंगी क्या?"

भूपति—"नहीं। मामा वगैरह सब यहीं आकर रहेंगे।"

मित्र—"आखिर सम्पादकीका नशा तुम्हारा छूटा ही नहीं किसी कदर! आश्चर्य है!"

भूपति—"आखिर आदमी ठहरा, भाई, आदमीके लिए एक-न-एक नशा चाहिए ही। बिना नशेके वह जी कैसे सकता है!"

२१

भूपति जब मैसूरके लिए रवाना होने लगे तो चारुने उनसे पूछा—"कितने दिनमें आओगे ?"

भूपतिने अपनेको सम्हाला , और चारुकी तरफ बगैर देखे ही कहा—"जब तुम्हारा जी न लगे, लिख देना, मै चला आऊँगा ।"

इतना कहकर भूपति दरवाजेके पास पहुंचे ही थे कि चारु सहसा दौड़ी गई और उनका रास्ता रोककर, हाथ पकडके, बोली—"मुझे भी साथ लेते चलो । यहाँ मुझे अकेली न छोड जाओ !"

भूपति ठिठककर खड़े हो गये ; और कुछ देर तक स्तब्ध होकर चारुके मुंहकी तरफ एकटक देखते रहे । मुट्ठी ढीली हो जानेसे चारुके हाथसे भूपतिका हाथ छूट गया । भूपति चारुके पाससे हटकर बरामदेमे जा खडे हुए ।

भूपतिको समझनेमें देर न लगी कि अमलके विच्छेदकी स्मृति जिस घरको चारों तरफसे घेरे-हुए ग्रस रही है, उस घरको चारु दावानल-ग्रस्त वनकी हरिणीकी तरह छोडकर भागना चाहती है ! और मन-ही-मन कहने लगे, 'पर मेरे विषयमे उसने एक बार भी नही सोचा कि मै कहाँ भागकर जाऊँ ? जो स्त्री अपने हृदयमे निरन्तर दूसरेका ध्यान करती है, परदेश जाकर भी उसे भूलनेकी मुझे छुट्टी नही मिलेगी ! निर्जन बन्धु-हीन प्रवासमे भी प्रतिदिन मुझे उसका साथ देना पडेगा ! दिन-भर परिश्रम करके शामको जब घर लौटूंगा, तब उस घरमे निस्तब्ध शोकाकुल नारीके साथ मेरी राते कैसी भयानक हो उठेगी ! जिसके हृदयके भीतर मृतकका भार है उस हृदयको अपने पास रखना ! यह मै कब तक कर सकूँगा ? और भी कितने वर्ष रोज-रोज मुझे इस तरह जीना पडेगा ? जो आश्रय टूट-फूटकर चकनाचूर हो गया है, उसकी टूटी-फूटी ईंट-लकडियोंको फेंककर भी कहीं नहीं जा सकता मै ! उसके सम्पूर्ण असह्य बोझको अपने कँधेपर लादकर ले जाना पडेगा मुझे !

भूपतिने चारुसे आकर कहा—"नही, सो मुझसे नही हो सकता।"

एक ही क्षणमें चारुका सारा खून ठंडा पड गया; और चेहरा उसका सूखकर कगज सा सफेद हो गया। चारु पलंगकी पाटी पकड़कर उसके सहारे किसी कदर खड़ी रही।

भूपतिने उसी वक्त कहा—"चलो, चारु, मेरे साथ ही चलो।"

चारुने कहा—"नहीं, अब रहने दो!"

अकारादिक्रमिक सूची

[भाग १ से १४ तक]

चौदह भागोंकी अलग-अलग सूची

सातवाँ भाग

६० असम्भव बात, ६१ उद्धार, ६२ उलट-फेर, ६३ बदला, ६४ बेटा, ६५ रासमणिका लड़का, ६६ समाधान (कहानियाँ), और ६७ तपोवन (निबन्ध)

आठवाँ भाग

६८ अध्यापक, ६९ अपराजिता, ७० कर्मफल (कहानियाँ); ७१ अभिसार, ७२ अरूप-रतन, ७३ जनगण-मन-अधिनायक, ७४ दु:समय, ७५ निर्झरका स्वप्न-भङ्ग, ७६ सूरदासकी प्रार्थना, ७७ होली (काव्य और कविताएँ), और ७८ शिक्षाका विकीरण (निबन्ध)

नौवाँ-दसवाँ भाग

७९ 'उलझन' ("नौकाडूबी" उपन्यास)

ग्यारहवाँ भाग

८० 'डाकघर', ८१ 'नन्दिनी' (नाटक); ८२ अभिलाष, ८३ 'कच और देवयानी', ८४ न्याय-दण्ड, और ८५ मुक्त चैतन्य (काव्य और कविताएँ)

बारहवाँ भाग

८६ 'आखिरी कविता' (उपन्यास)

तेरहवाँ भाग

८७ कालकी यात्रा ('रथकी रस्सी' और 'कविकी दीक्षा') ८८ 'बाँसुरी' (नाटक); ८९ 'कर्ण-कुन्ती-संवाद', ९० देवताका ग्रास (काव्य और कविताएँ), ९१ पुस्तकालयोंका मुख्य कर्तव्य, ९२ मुक्तिकी दीक्षा, और ९३ साहित्य-धर्म (निबन्ध)

चौदहवाँ भाग

९४ भाभी (उपन्यास : बड़ी कहानी); ९५ विसर्जन (नाटक); और ९६ 'कणिका' (छोटी कविताएँ)